मृदंग
एक नई सोच

हिन्दी लिट्रेरी एसोसिएशन

मृदंग
एक नई सोच
प्रथम संस्करण : 2020

निदेशिका
श्रीमती जयालक्ष्मी के.

परिकल्पना
सिद्धार्थ गुप्ता, अर्चित रॉय, आतिफ़ अज़ीज़

संपादकीय मंडल
मृदुल श्रोत्रीय, पीयूष शिवम्
हर्ष मिश्रा, अधीश बंसल, कौशल पाटीदार, चिन्मय सिंह

पृष्ठ संरचना
श्रेयांश कलहंस
डिम्पल राजपुरोहित, शिवांग सिंह
संस्कार गुप्ता, साहिल बाल्याण

विशेष आभार
कार्यकारिणी समिति 2019-20

हिन्दी लिट्रेरी एसोसिएशन
वेल्लोर प्रौद्यौगिकी संस्थान, वेल्लोर

अनुक्रमणिका

शुभकामना संदेश	4
दो शब्द	5
हिंदी लिट्रेरी एसोसिएशन का परिचय	6
साहित्य जगत की प्रतिभाओं के साक्षात्कार	7
लेख	13
पहेलियाँ	16
कालजयी: रचनाएँ, जो हैं समय से परे	17
कविताएँ	21
कथाएँ	29
कथेतर रचनाएँ	35
पुस्तक समीक्षा	36
यादों के पन्ने	39

सन्देश

डॉ. जयालक्ष्मी के.

हिंदी लिट्रेरी एसोसिएशन ने हमारे संस्थान वी.आई.टी. में हिंदी के प्रचार और प्रसार में जिस प्रकार अपना योगदान दिया है वह काबिल-ए-तारीफ़ है। विगत कुछ वर्षों में एच.एल.ए. ने एक दूरदर्शी सोच के साथ काम करते हुए न केवल साहित्यिक, अपितु सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भी छात्रों के पूर्णरूपेण रचनात्मक विकास के लिए कड़ी मेहनत के बल पर वी.आई.टी. में अपनी एक अलग पहचान स्थापित की है।

कॉलेज प्रबंधन, शैक्षणिक एवं गैर-शैक्षणिक कर्मचारीगण और हमारे प्यारे छात्रों ने भी हमारा हर क़दम पर साथ दिया। आपसे जो स्नेह प्राप्त हुआ उसके लिए सबको धन्यवाद। उम्मीद है आप आगे भी हमारा उत्साहवर्धन इसी प्रकार करते रहेंगे।

सदस्यों की कर्मठता और लगन के चलते मैं इस क्लब की समन्वयिका होने पर बहुत गर्व महसूस करती हूँ। मैं यह निश्चित रूप से कह सकती हूँ कि यह संस्था आगे भी इसी कर्तव्यनिष्ठा के साथ कौशल विकास में अपना योगदान देती रहेगी और नित नई ऊंचाईयों को हासिल करती रहेगी।

मैं सभी लेखकों, क्लब सदस्यों और पत्रिका के संपादकों के अथक प्रयासों के लिए उन्हें बधाई देती हूँ।

मेरी आशा है कि 'मृदंग' हिंदी लिट्रेरी एसोसिएशन की विचारधारा को आगे बढ़ाने में एक महत्वपूर्ण मील का पत्थर साबित होगा।

सभी को मेरी ओर से शुभकामनाएँ!

डॉ. जयालक्ष्मी के.
समन्वयिका,
हिंदी लिट्रेरी एसोसिएशन

दो शब्द

"मैं अकेला ही चला था जानिब-ए-मंज़िल मगर, लोग साथ आते गये और कारवां बनता गया"

मजरूह सुल्तानपुरी साहब की यह पंक्तियाँ इस पत्रिका की रचना के सफ़र को यथेष्टतया बयां करती हैं।'मृदंग' केवल एक पत्रिका ही नहीं परन्तु हिंदी साहित्य के उत्थान के यज्ञ में हिंदी लिट्रेरी एसोसिएशन की एक छोटी-सी आहुति है। वी.आई.टी. में छुपे हिंदी साहित्यकारों को एक मंच प्रदान करने के लिए यह पत्रिका हमारे संपादकीय दल की एक और पहल है। यह एक प्रयास है हिंदी भाषियों के मन में हिंदी साहित्य के प्रति रुझान बढ़ाने की। 'मृदंग' हिंदी लिट्रेरी एसोसिएशन के साहित्यिक कौशल और रचनात्मकता का चेहरा भी है।

इस पत्रिका को अस्तित्व में लाने के लिए जिन भी महानुभावों की मदद की आवश्यकता हुई है, उन्होंने अपना पूरा योगदान दिया है। संपादकीय दल उन सभी का ऋणी है। सर्वप्रथम हिंदी लिट्रेरी एसोसिएशन की संकाय समन्वयिका श्रीमती जयलक्ष्मी के. महोदया को उनके दिशा निर्देश के लिए हम उनके आभारी हैं। सभी गणमान्य जिनका साक्षात्कार इस पत्रिका में लिया गया है, हम उन्हें उनका बहुमूल्य समय हमें प्रदान करने के लिए धन्यवाद देते हैं। साथ ही उन सभी रचनाकारों का शुक्रिया, जिनकी रचनाएँ इस पत्रिका का भाग बनीं।

इस पत्रिका को हमने कुछ वर्गों में विभाजित किया है जिनमें कालजयी, परिचय और साक्षात्कार प्रमुख हैं। हिंदी साहित्य के क्षीर सागर में कई ऐसे मोती हैं जिनकी जितनी प्रासंगिकता उस वक़्त थी उतनी ही आज भी है। इन्हीं रचनाओं और उनकी महत्ता को आप तक पहुंचाने का एक प्रयास है 'कालजयी'। सिर्फ़ कुछ रचनाएं ही नहीं परन्तु उनके रचनाकारों की ज़िंदगी भी अपने में एक रोचक किस्सा होती है। जहाँ कुछ किस्से आपको जीवन जीने की सीख दे जाते हैं वहीं कुछ आपको उस रचनाकार की मनोदशा से अवगत कराते हैं। कुछ आपके आंखों में आंसू ला देते हैं तो कुछ आपके चेहरे पर एक हल्की सी मुस्कान छोड़ जाते हैं। इन्हीं रचनाओं को आप तक पहुंचाता है 'परिचय'। 'साक्षात्कार' समकालीन रचनाकारों की मन की बात बतलाने वाला एक वर्ग है जिसमें मौजूदा दौर के दो प्रसिद्ध फ़नकारों से हुई बातचीत का वर्णन किया गया है। इसके अलावा और भी वर्ग हैं जिनमें आपको बेहतरीन कहानियाँ, कविताएँ और लेख पढ़ने के लिए मिलेंगे।

यह पत्रिका हमारे कठिन परिश्रम और लगन का परिणाम है। बहुत दिल लगाकर आप तक पहुँचाया है परंतु अगर फिर भी हमसे कोई भी त्रुटि हो गई हो तो उसके लिए हम क्षमाप्राथी हैं। इस पत्रिका से सम्बंधित आपकी सारी प्रतिपुष्टियों का स्वागत है। आशा करते हैं कि 'मृदंग' आपके दिलों में घर कर जाएगा और आगे भी हिंदी लिट्रेरी एसोसिएशन को आपका साथ मिलता रहेगा।

आभार सहित 'मृदंग' आपको सौंपते हुए,
आपका संपादकीय दल।

हिंदी हैं हम

हमारा क्लब, हिंदी लिट्रेरी एसोसिएशन हिंदी के उत्थान और प्रचार के लिए समर्पित एक समिति है जिसकी नींव एक दशक पहले पड़ी थी। हमारा लक्ष्य भाषा के रूप में हिंदी के प्रति एक खुला रवैया बनाना और इसमें संचार की दक्षता हासिल करना है। जैसा कि सभी जानते हैं कि दुनिया में इतनी सारी भाषाएँ होने के बावजूद मातृभाषा हर किसी के दिल तक पहुँचने में कभी विफल नहीं होती है, इसीलिए हमारा मुख्य उद्देश्य सभी लोगों में हिंदी भाषा को बढ़ावा देना है। हम दक्षिण भारत क्षेत्र में हिंदी भाषा को बढ़ावा देने के लिए अपने अथक प्रयास कर रहे हैं, जहां यह भाषा इतनी लोकप्रिय नहीं है।

यह सर्वविदित है कि प्रत्येक व्यक्ति में कुछ छिपी हुई प्रतिभाएँ होती है और उन प्रतिभाओं को व्यक्त करने के लिए एक मंच की ज़रूरत पड़ती है। वी.आई.टी. में वही मंच हम सबको प्रदान करते हैं जिससे वे सारी प्रतिभाएँ और हुनर निखर कर बाहर आएं। यही नहीं, हम इस प्रतिभा को अगले स्तर तक ले जाने के लिए भी पूरी कोशिश करते हैं और राज्य-स्तरीय एवं राष्ट्रीय स्तर की प्रतियोगिताओं के लिए छात्रों को तैयार करते हैं। हम केवल इतना चाहते हैं कि यदि भविष्य में हमारे बच्चे हमसे अपनी मातृभाषा के बारे में पूछें, तो हमारे पास भाषा के बारे में कुछ कहानियाँ शेष रहें। प्रतिभाओं को प्रोत्साहन के लिए हम जो प्रयास करते हैं, उनमें से कुछ निम्नलिखित हैं:

मह-FEEL :- यह कार्यक्रम एक ओपन माइक की तरह होता है जहाँ लोग मंच पर आकर कविताएं, गीत, नाटकं, ग़ज़लें, नज़्म आदि के क्षेत्र में अपनी प्रतिभाओं का प्रदर्शन करते हैं।

कारवाँ :- हमारे इस प्रयास में हम साक्षात्कार के माध्यम से आपके लिए उन लोगों की कहानियां प्रस्तुत करते हैं जिन्होंने अपनी ज़िन्दगी में कढ़ा संघर्ष और मेहनत कर वह मुकाम हासिल किया जहां वे आज खड़े हैं।

पाठशाला :- यह प्रस्तुति लोगों को हिंदी और उर्दू भाषा की शब्दावली और मूल व्याकरण सीखाने पर केन्द्रित है।

वाद विवाद :- हमारी इस पहल में हम एक चर्चित विषय पर बहस के माध्यम से निष्कर्ष पर पहुंचने की कोशिश करते हैं।

इतना ही नहीं बल्कि हमारे कॉलेज के वार्षिकोत्सव "Riviera" और "Gravitas" में हमारा योगदान उच्चतम होता है और हम अनेक मज़ेदार कार्यक्रम आयोजित करवाते हैं जहाँ सभी इन खेलों का लुत्फ़ उठाते हैं।

हमारी कोशिश सिर्फ़ आपको भाषायी कौशल और रचनात्मकता का ज्ञान देना नहीं अपितु उसके साथ आपके चेहरों पर एक सुंदर सी मुस्कान प्रदान करना भी है। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि हम सिर्फ़ एक क्लब या समूह नहीं बल्कि एक बड़े परिवार का हिस्सा हैं जो आपके अंदर छिपी प्रतिभाएं खोजने का पूरा प्रयास करता है। तो हम सब खुली बाँहों से आप सब को आमंत्रित करते हैं कि आप सब हमारे साथ इस सफ़र में जुड़ें और हमारे परिवार का एक हिस्सा बन हिंदी जगत को नई ऊंचाइयों पर लेकर जाएं।

दिव्य प्रकाश दुबे

दिव्य प्रकाश दुबे टेलीकॉम कम्पनी में मार्केटिंग मैनेजर से हिंदी के लेखक बन गए हैं । अब तक चार बेस्ट सेलर लिख चुके हैं - 'Terms and Conditions Apply 'शर्तें लागू', 'मसाला चाय', 'मुसाफ़िर कैफ़े' और 'अक्टूबर जंक्शन' । थिएटर व शॉर्ट फ़िल्में भी लिखते हैं। साथ ही साथ 'स्टोरीबाज़ी' में कहानियां भी सुनाते हैं। प्रस्तुत है हिंदी लिट्रेरी एसोसिएशन के मृदुल श्रोत्रीय के साथ उनके साक्षात्कार के कुछ अंश।

प्र. हिन्दी की तरफ़ आपका रुझान कब से हुआ और कब आपको लगा कि लिखने के क्षेत्र में आप बेहतर कर सकते हैं ?

जब मैं कॉलेज में था, उस वक़्त एक चीज़ तय थी कि यहां से अब जॉब तो नहीं लग रही है । वहां थर्ड ईअर में मैंने एक नाटक लिखा । उसमें जब तालियां बजी, उस वक़्त एहसास हुआ कि लिखने का ही काम है जो मैं अच्छे से कर सकता हूँ । मगर आत्मविश्वास पहली किताब के बाद आया था ।

प्र. आपकी पहली किताब का नाम था 'टर्म्स एंड कंडीशंस अप्लाई', यह नाम अंग्रेज़ी का और किताब हिंदी की, इसकी क्या कहानी रही ?

एक चीज़ मुझे बहुत पहले से दिखती थी कि जो युवा पीढ़ी है वह हिंदी की किताबें नहीं पढ़ती । मुझे यह एहसास था कि अंग्रेज़ी शीर्षक रखने से वे लोग एक बार किताब उठाकर तो देखेंगे । और यह नाम मुझे बड़ा आकर्षक लगता था क्योंकि हर चीज़ के पीछे लगा दिया जाता है 'Terms and Conditions Apply' । नाम मैंने बहुत पहले सोच लिया था, किताब मैं कभी भी लिखता तो नाम यही होता ।

प्र. पहली किताब के बाद कैसा महसूस हो रहा था ?

जब किताब छप कर आयी तो उस पर ऑटोग्राफ किया । तब बहुत अच्छा लगा क्योंकि बचपन से यह एक बात दिमाग़ में होती है कि आप बड़े आदमी तब बनते हैं जब आपका हस्ताक्षर ऑटोग्राफ में बदल जाता है ।

"आपकी ख़ुद से एक लड़ाई चल रही होती है कि
मैं सौ पन्ने किसी से पढ़वा लूँ और वह बोर न हो"

-दिव्य प्रकाश दुबे

प्र. पहले आपका नाम दुर्गा प्रसाद रखा गया था, तो दुर्गा प्रसाद से दिव्य प्रकाश बनने की क्या कहानी है ?

पहले नाम राशि के हिसाब से रखा गया था । फिर स्कूल में कहा गया कि लोग बहुत चिढ़ाएंगे, तो उसे बदल कर दिव्य प्रकाश रखा गया । मगर जो सफ़र है वह दुर्गा प्रसाद से दिव्य प्रकाश होने का नहीं है, वह दुबे जी का बेटा होने से दिव्य प्रकाश होने का है । क्योंकि मेरे पिताजी को सभी जानते थे, तो अपनी एक अलग पहचान बनाना मेरे लिए बहुत ही ख़ुशी की बात थी ।

प्र. आप बीच में मुसाफ़िर कैफ़े को भी एक कहानी संग्रह ही करने वाले थे । फिर आपने किरदारों के नाम को सुधा, चन्दर और पम्मी (धर्मवीर भारती की 'गुनाहों का देवता' के किरदार) किया । उसके बाद से सब कुछ बनता चला गया। आपके अनुसार एक लेखक को किस हद तक दूसरी कहानियां प्रभावित करती हैं ?

आप जब भी कोई किताब पढ़ते हो तो आपको यह ख़याल रहता है कि लेखक का उधार कैसे चुकाया जाए । यह बिल्कुल ऐसा ही है कि कोई आपको मुफ़्त में दस लाख रूपए दे और बोले कि जब मौका मिले तब चुका देना और नहीं भी चुकाओगे तो कोई बात नहीं । लेकिन आपके दिमाग में भी बात रहती है कि मैं वापस करूँगा और दस लाख नहीं, एक करोड़ करूँगा । तो मैं अपनी तरफ़ से धर्मवीर भारती को श्रद्धांजलि दे रहा था । मेरी किताब के बहाने ही सही आज की पीढ़ी धर्मवीर भारती को जानेगी । हालांकि इससे पहले 'गुनाहों का देवता' पर जो भी प्रयास हुआ था वह विफल रहा था, फिर भी मैंने इसे किया क्योंकि यह मेरे अंदर से आ रहा था ।

प्र. आपको अब एक लेखक के रूप में पहचान मिल चुकी है । क्या आपका कभी कोई ऐसा प्रशसंक रहा है जो आपसे राह चलते मिला हो और उसने आपको पहचाना हो ?

बॉम्बे में पृथ्वी थिएटर है, वहां जब मैंने कार्ड से पेमेंट किया तो एक लड़का रसीद पर मेरा नाम देखकर मेरे पास आया और बोला कि आपकी किताब 'मसाला चाय' मैंने पढ़ी है । उस वक़्त मुझे बहुत अच्छा लगा क्योंकि उसने मुझे मेरी शक्ल से नहीं पहचाना था, वह बस मेरा नाम जानता था और मेरी किताब पढ़ी थी । यह मुझे लगता है कि वह मेरे लिए सबसे बड़ा क्षण था क्योंकि मैंने सोचा नहीं था कि लोग इस तरह भी पहचानेंगे ।

प्र. आपकी पहली दो किताबें कहानी संग्रह थीं । फिर आपने उपन्यास लिखे । छोटी कहानियां लिखने के बाद एक उपन्यास लिखना कितना मुश्किल था ?

हाँ, मुश्किल तो था। कई बार मुझे लगा कि नहीं हो पाएगा । जैसे पहले मैं कहानियां लिखता था तो चार पन्नों की होती थी। फिर छः, दस, पच्चीस, और पचास हुईं । आपकी ख़ुद से एक लड़ाई चल रही होती है कि मैं 100 पन्ने किसी से पढ़वा लूँ और वह बोर न हो। यह नहीं लिख पाने का डर ही आपसे लिखवाता है।

प्र. आपने थिएटर के लिए भी लिखा, शॉर्ट फ़िल्में भी लिखीं । आगे चल कर क्या आप स्क्रीनप्ले भी लिखेंगें ?

फ़िल्म में लेखक के हाथ में बहुत कम स्वतंत्रता होती है क्योंकि फिल्म एक निर्देशक का माध्यम है । मैं संवाद लिखना ज़्यादा पसंद करता हूँ ।

प्र. आपके पसंदीदा लेखक कौन हैं जिन्हें आप हर वक़्त पढ़ना पसंद करते हैं ?

मनोहर श्याम जोशी । मुझे लगता है कि कोई भी अगर मनोहर श्याम जोशी को पढ़ ले तो अपने आप में छोटा-मोटा लेखक तो वह बन ही जाएगा ।

"अब और क्या किसी से मरासिम बढ़ाएँ हम
ये भी बहुत है तुझ को अगर भूल जाएँ हम"
-अहमद फ़राज़

प्र. 'नई वाली हिंदी' में आपका, सत्य व्यास जी का और निखिल सचान जी का नाम सबसे ऊपर आता है । तो कभी प्रतियोगिता वाली भावना महसूस हुई है क्या ?

नहीं, हम तीनों के लिखने का तरीक़ा बिल्कुल अलग है । हमारे बीच में प्रतियोगिता जैसा कुछ नहीं है ।

प्र. अंग्रेज़ी की जो किताबें हैं वे एक लाख प्रतियां बिकने के बाद बेस्ट सेलर सूची में आती हैं । वहीं हिंदी में दस हज़ार के बाद ही बेस्ट सेलर हो जाती हैं । आपको क्या लगता है यह आंकड़ा धीरे-धीरे बदलेगा ?

मेरे लिए पंद्रह-बीस हज़ार कभी भी ऐसा आंकड़ा नहीं था जो मुझे यहां टिकाए रखता क्योंकि जिस दिन मेरी एक लाख किताबें बिकने लगेंगी तो फिर मुझे कुछ और करने की ज़रूरत ही नहीं रहेगी । फिर चाहे मैं लिखूं या न लिखूं या अनुसन्धान करूँ । यह तब होगा जब आपकी किताब का ऐसा मार्केट बन जाए कि आपकी किताब आते ही लोग पढ़ने लगे । अभी हम लोगों को वहां पहुंचने में समय लगेगा ।

परिचय

प्रेमचंद

(31 जुलाई 1880 - 8 अक्टूबर 1936)

'प्रेमचंद' उपनाम रखने से पहले धनपत राय ने 'नवाब राय' उपनाम का इस्तेमाल किया था। सोज़-ए-वतन नाम से इनका एक कहानी संग्रह, जो इन्होंने 'नवाब राय' के नाम से लिखा था। अंग्रेज़ी सरकार ने इसकी हज़ारों प्रतियाँ सरेबाज़ार जला डालीं।
कुछ का कहना है कि पहले ज़माने में अध्यापकों को 'मुंशी' कहा जाता था। शायद इस वजह से उनका नाम मुंशी प्रेमचंद पड़ा होगा।

कुछ मानते हैं कि कायस्थों के नाम के पहले सम्मान स्वरूप 'मुंशी' शब्द लगाने की परम्परा रही है जिस कारण प्रेमचंद के साथ मुंशी शब्द जुड़ गया होगा।
पैसों की कमी के कारण इनकी बीवी भी मायके चली गई। फिर लौट कर नहीं आई। प्रेमचंद विधवा विवाह का समर्थन करते थे। इसलिए दूसरा विवाह उन्होंने एक बाल विधवा शिवरानी से किया।
मुंशी प्रेमचंद भारत के बीसवीं सदी के महान लेखकों में से एक हैं, जिनको हम "उपन्यास सम्राट" के नाम से भी जानते हैं।

अपनी मर्ज़ी से कहाँ अपने सफ़र के हम हैं
रुख़ हवाओं का जिधर का है उधर के हम हैं
– निदा फ़ाज़ली

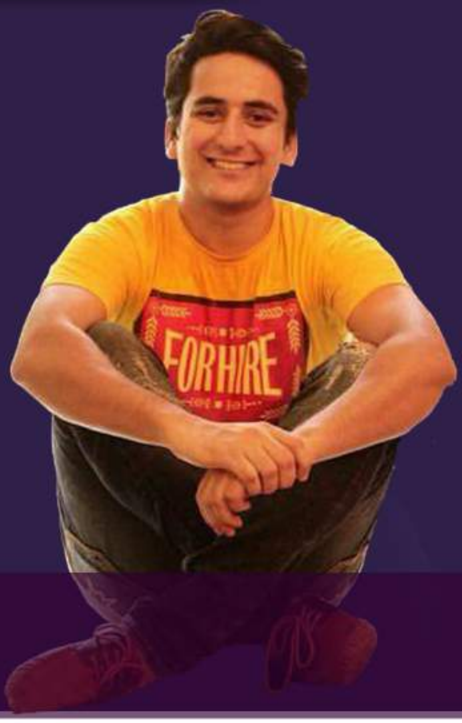

फ़ैज़ान ख़ान

शाजहांपुर में जन्मे फ़ैज़ान का बचपन दिल्ली में बीता । थिएटर का हिस्सा रहने के बाद 'रोबोट 2.0', 'दंगल', 'सुल्तान' में बतौर असिस्टेंट डायरेक्टर काम किया । आजकल नाटक लिख रहें । निर्देशन भी कर रहे हैं । वर्ष 2017 में अपनी पहली किताब 'रंगों में बेरंग' के साथ पाठकों के बीच अपनी एक ख़ास जगह बना चुके हैं । मृदुल श्रोत्रीय से उनकी बातचीत के कुछ अंश...

प्र. आपको एक्टिंग का शौक़ कैसे लगा?

बचपन से मिमिक्री का शौक़ था । टीचर्स और आस-पास के लोगों की करता था । यही सोचता था कि स्टार बनना है । उस वक़्त पता नहीं था कि कैसे बना जाता है या क्या-क्या सीखना होता है । यही लगता था कि 'रोडीज़' में विनर बन जाएंगे, फिर बिगबॉस में विनर बन जाएंगे और फ़िल्म मिलने लगेगी । मुझे पता नहीं था कि थिएटर का भी कोई प्रोसेस है जहां सिखाते हैं ।
मैंने बारहवीं पास की । फिर घर पर सब कहते थे कि दूसरों से पूछो कि इस लाइन में जाना है तो क्या करना चाहिए । सब यही बोलते थे कि Mass Com करो । मुझे समझ नहीं आ रहा था कि आगे क्या करना है । मैंने काफ़ी वक़्त लिया । बहुत दिन घर पर रहा और फिर तय किया कि एक्टिंग में ही आगे जाना है ।

प्र. आपने एक्टिंग में आगे बढ़ने का फैसला बारहवीं के बाद ही किया था, तो घर पर बताने में किस तरह की दिक़्क़तों का सामना करना पड़ा ?

हाँ, दिक़्क़त तो हुई थी । पर जितना मैंने समझा है, अपने आप से ही लड़ना पड़ता है । जो लोग बोलते हैं कि घर वालों को दिक़्क़त हो रही है या एक बैकअप प्लान होना चाहिए, मुझे लगता है वे शायद अपने आप को कमज़ोर मानते हैं । अगर आपको अपने ऊपर पूरा विश्वास है कि जो काम आपको करना है उसमें आप सफल होंगे, तो आज नहीं तो कल घर पर भी सब मान ही जाएंगे । कोई कुछ काम करना चाहता है तो वह शान्ति से सोचे कि उसे वह मज़े के लिए करना है या वह रोज़ इसी पर काम

"अब कुछ भी करना है, भले मुझे आलू ही क्यों न बेचने हो तो भी मुझे सीखना होगा और अपना वक़्त देना होगा। तो आराम से फ़ैसला करें और एक बार फ़ैसला करने के बाद फिर पीछे न हटें" ।

-फ़ैज़ान ख़ान

करने के लिए तैयार है । आपको काम करना है तो आप किसी भी तरह से, प्यार से या थोड़ा नाराज़ होकर भी मम्मी-पापा को मना ही लेंगे ।

अब कुछ भी करना है, भले मुझे आलू ही क्यों न बेचने हो तो भी मुझे सीखना होगा और अपना वक़्त देना होगा। तो आराम से फ़ैसला करें और एक बार फ़ैसला करने के बाद फिर पीछे न हटें ।

प्र. थिएटर का सफ़र कैसे शुरू हुआ ?

मुझे लगता था कि थिएटर में दो ही चीज़ सिखाते होंगे- रामलीला और रोमियो-जूलिएट । मैं यही कोशिश करता था कि राम कैसे बनूँगा या हनुमान कैसे बनूँगा । फिर एनएसडी (National School of Drama) गया तो पता चला कि वहां जाने के लिए ग्रेजुएशन चाहिए होता है । एक शाम मैं मंडी हाउस में बैठा यही सोच रहा था कि कोई थिएटर ग्रुप मुझे मिल जाए । तभी वहां एक तरफ लोगों को नाटक देखने के लिए बुला रहे थे । वहां 'अस्मिता' का नुक्कड़ नाटक हो रहा था । वह मुझे बहुत अच्छा लगा । मैंने फिर उनके एक्टर्स से बात की । इस तरह से थोड़ी बहुत जान-पहचान हुई । फिर मैं 'अस्मिता थिएटर ग्रुप' में ही शामिल हो गया । वहां दो साल काम करने के बाद मैं 'क्षितिज थिएटर ग्रुप' में शामिल हुआ ।

प्र. एक्टिंग से लेखन की तरफ़ रुझान कैसे हुआ ?

मुझे भी ख़ुद यक़ीन नहीं हुआ कि यह लिखना कैसे शुरू हुआ । थोड़ा-बहुत लिख लेता था, लेकिन पढ़ने से मुझे बहुत कोफ़्त होती थी । पहले तो मैं बिल्कुल नहीं पढ़ता था मगर अब पढ़ने लगा हूँ । यह शायद थिएटर से ही है । 'अस्मिता' में मैंने बहुत से राइटर्स को पढ़ा क्योंकि प्ले के पहले कहानी को समझना पड़ता था । मेरे दिमाग में बचपन से ही लेखन के प्रति कुछ था, मगर पता नहीं था कि लिखते कैसे हैं या कैसे आगे बढ़ना है । वह शायद थिएटर में आने से समझ आया।

प्र. जब पहली किताब आयी तब आपको कैसा महसूस हो रहा था ?

ज़ाहिर सी बात है महसूस तो अच्छा ही हो रहा था । लेकिन जब आप किसी चीज़ के लिए इंतज़ार कर रहे होते हैं, चाहे प्यार हो या नौकरी, कुछ भी जो आपकी ज़िन्दगी में बहुत महत्व रखता है, जब वह चीज़ आती है तब आप कुछ महसूस ही नहीं कर रहे होते हैं । जब किताब आयी तो मैं बिल्कुल कोरा था । मुझे समझ ही नहीं आ रहा था कि ख़ुश होना है, ऐसे ही रहना है या क्या करना है । एक अजीब सी ख़ुशी थी।

प्र. इन सब के बीच असिस्टेंट डायरेक्टर बनने की तरफ़ रुख़ कैसे किया ?

मेरे एक दोस्त हैं, दीपक मल्होत्रा । वे असिस्टेंट कास्टिंग डायरेक्टर हैं । उनके पास मैं और मेरे कुछ दोस्त एक फ़िल्म के ऑडिशन के लिए गए थे । एरिक रॉबर्ट्स की फिल्म थी, 'Zia' । वहां हम देर से पहुंचे थे तो ऑडिशन नहीं दे पाए । फिर उनका फ़ोन आया कि 'रोबोट 2.0' के लिए असिस्टेंट डायरेक्टर की ज़रूरत है, आप करना चाहें तो कर सकते हैं । मैंने यही सोचा कि कुछ सीखने को ही मिलेगा । समझ में आएगा कि कैसे शूटिंग होती है । वहां ईमानदारी से काम किया, फिर आगे चल कर 'सुल्तान' और 'दंगल' में काम मिला । फिर 'Zia' के लिए फर्स्ट ए.डी. का प्रस्ताव आया । वहां कुछ दिन काम किया, मगर मुझे जमा नहीं तो मैंने छोड़ दिया।

प्र. हिंदी का मार्केट बहुत कम है और ज़्यादातर लोग कहानियां पढ़ना पसंद करते हैं । ऐसे में आपने कविता से शुरुआत की । आपके लिए यह कितना चुनौतीपूर्ण था?

यह मुझे चुनौतीपूर्ण कम और प्रकाशकों का आलसीपन ज़्यादा लगता है । आज के समय में आपको कुछ भी

"मज़हबी बहस मैं ने की ही नहीं
फ़ालतू अक़्ल मुझ में थी ही नहीं"
-अकबर इलाहाबादी

बेचना है तो उसे ठीक तरह से प्रमोट करना बहुत ज़रूरी है। हिंदी के जो प्रकाशक हैं वे प्रमोट ही नहीं करते हैं । और हमारे यहां हिंदी के बुक स्टोर भी नहीं है । तो जो मुझे कहीं दिखेगा ही नहीं उसे मैं कैसे ख़रीदूंगा । शायद प्रकाशक मान चुके हैं कि कविता कोई नहीं पढ़ता तो उसे प्रमोट करने की ज़रूरत नहीं है । इसलिए कविता कहीं न कहीं पीछे रह जाती है । पर अगर ठीक तरह से प्रमोशन होगा तो वह बिकेगी और अगर अच्छी किताब है तो आगे ख़ुद ही बिकती चली जाएगी । मगर शुरुआत में प्रमोशन बहुत ज़रूरी है ।

प्र. 'रंगों में बेरंग' के अंत में आपने वादा किया है कि आप कहानी की शक्ल में फिर से रूबरू होंगे, उसके लिए हमें कितना इंतज़ार करना पड़ेगा?

मैं अभी लिख रहा हूँ । हालाँकि काम बहुत रहता है पर इस साल के अंत तक शायद नई किताब आ जाए ।

फ़ैज़ान खान के फेसबुक वॉल से...

तुम बन जाना

तुम बरस पड़ना मेघा सी
मैं अंकुर सा खिल जाऊँगा

तुम बह जाना नद्दी सी
मैं पहाड़ों सा अड़ जाऊँगा

तुम बन जाना अमरूद
मैं आँगन सा लेट जाऊंगा

तुम छिप जाना तारों में
मैं कोई बच्चा सा बन जाऊंगा

तुम बंद हो जाना अख़रोट में
मैं गिलहरी सा बन जाऊंगा

तुम दौड़ पड़ना ट्रेन सी
मैं पटरी सा ठहर जाऊँगा

तुम बहती रहना हवा सी
मैं पतंग सा उड़ जाऊंगा

तुम जलती रहना अंगीठी सी
मैं भुट्टा सा भुन जाऊंगा

तुम कागज़ सी कोरी बन जाना
मैं कलम सा स्याही बन जाऊंगा

तुम ईश्वर सी बन जाना
मैं करुणा सा बन जाऊंगा

तुम घर बन जाना
मैं दरवाज़ा सा बन जाऊंगा

तुम बर्फ़ सी जम जाना
मैं धूप सा बन जाऊँगा

तुम किनारा बन जाना
मैं नाव सा बन जाऊंगा

तुम कर्ण बन जाना
मैं कुंडल कवच सा बन जाऊंगा

तुम हृदय बन जाना
मैं प्रेम सा पनप जाऊंगा

तुम कोई बच्ची सी बन जाना
मैं मुस्कुराहट सा बन जाऊंगा

तुम तितली सी बन जाना
मैं किसी बच्चे के हाथ सा बन जाऊँगा

तुम चाहे कुछ मर्ज़ी बन जाना
मैं ज़िद सा बन जाऊंगा।

"मैं अकेला ही चला था जानिब-ए-मंज़िल मगर
लोग साथ आते गए और कारवाँ बनता गया"
-मजरूह सुल्तानपुरी

हर फ़िक्र को धुएँ में उड़ाता चला गया

"यार एक बार लेकर तो देख, कुछ नहीं होगा" किसी दोस्त की अपने दोस्त को कही गई यह बात उसकी ज़िन्दगी को एक ऐसी राह पर मोड़ सकती है जहाँ से वापस लौटना काफ़ी मुश्किल हो जाता है। जी हाँ, मैं बात कर रहा हूँ धूम्रपान और शराब की। इससे होने वाली बीमारियाँ न सिर्फ़ उसकी अपनी ज़िन्दगी तबाह करती है बल्कि उससे जुड़े कई लोगों को कभी न भर पाने वाला एक घाव देकर जाती है।

आज के समय में महज़ 14 साल का बच्चा भी इन पदार्थों का सेवन करने लगता है। एक शोध के अनुसार 12-17 वर्ष के 5%, 18-20 वर्ष के 20%, 20-30 वर्ष के 30% और 30-45 वर्ष के 25% लोग इनका इस्तेमाल करते हैं। सबसे ज़्यादा इस्तेमाल युवा वर्ग यानी हमारे ही उम्र के लोग करते हैं। वे हमारे ही साथ पढ़ने, रहने वाले हमारे साथी होते हैं। कॉलेज एक ऐसा दौर होता है जब हम परिपक्वता और अपरिपक्वता के बीच के असंतुलन से जूझ रहे होते हैं।

हम अच्छी तरह समझते हैं कि क्या अच्छा है और क्या बुरा पर इसके बावजूद हम ऐसी चीज़ों को अपनाते हैं। जब एक 22 साल के युवक का साक्षात्कार लिया गया और उनसे पूछा गया कि आपने यह शुरू कैसे किया तो उसका जवाब था कि "मैंने अपने दोस्तों की बात मानकर इसे शुरू किया और आज यह मेरी ऐसी बुरी लत बन गई है जिसे मैं चाह कर भी नहीं छोड़ पा रहा हूँ"।

शराब और सिगरेट पीने की वजह क्या है? कुछ लोग कहते है कि वे अपने जीवन का तनाव दूर करने के लिए इसका सेवन करते हैं। पर क्या तनाव दूर करने का यही तरीका है। "क्या फ़ायदा ऐसी दवा का जो आगे चलकर ज़हर बन जाए"? शराब यकृत (लिवर) को और सिगरेट फेफड़ों को भारी नुकसान पहुँचाती है। अमेरिका में हुए एक शोध के अनुसार इसका दिमाग पर बहुत बुरा असर पड़ता है जिससे इंसान की सोचने-समझने की क्षमता कम हो जाती है। मैं यह नहीं कहूँगा कि इसका सेवन करने वाला हर इंसान बुरा होता है पर यह ज़रूर है कि नशे में इंसान का ख़ुद पर नियंत्रण नहीं होता और वह कुछ ऐसा कर जाता है जिससे उसकी सालों की कमाई गई इज्ज़त पल भर में मिट्टी में मिल जाती है।

अब रहीम मुश्किल पड़ी, गाढ़े दोऊ काम।
साँचे से तो जग नहीं, झूठे मिलैं न राम ॥
-रहीम

भारत में हर साल 11% मौतें सिर्फ़ शराब और सिगरेट पीने से होती हैं। धूम्रपान उपभोक्ता के लिए तो जानलेवा है ही, इसके अतिरिक्त यह हमारे आस-पास रहने वाले उन लोगों के लिए भी जानलेवा है जो धूम्रपान नहीं करते। इसे निष्क्रिय धूम्रपान कहते हैं। निष्क्रिय धूम्रपान से भी फेफड़ों का कैंसर और हृदय की कई बीमारियाँ होती हैं। लंदन यूनिवर्सिटी की एक रिपोर्ट के अनुसार 14% युवाओं की मौत शराब और सिगरेट पीने से होती है।" आँकड़ों में तो बस एक इंसान मरता है लेकिन उसके मरने पर जो उसका परिवार प्रतिदिन घुट-घुट कर मरता है उस रिपोर्ट की पुष्टि कौन-सी यूनिवर्सिटी करेगी!"

एक शराब कम्पनी के विज्ञापन की टैगलाइन है, "स्मॉल मिलाते जाओ, लार्ज बनाते जाओ"। मेरी समझ से तो यहाँ 'स्मॉल' का मतलब बीमारियों से होगा। एक पान मसाले का विज्ञापन है "दाने-दाने में केसर का दम"। दरअसल वह विज्ञापन है "दाने दाने में कैंसर का दम"। सोचने की बात है कि अगर ₹10 में 10 ग्राम केसर मिलने लगे तो लोग हज़ारों रूपए खर्च क्यों करते हैं! यहाँ गलती कम्पनियों की नहीं है, गलती लोगों की भी है जिन्हें पैकेट के 40% हिस्से पर छपी चेतावनी दिखाई नहीं देती। एक रिपोर्ट के अनुसार 90.2% लोग मानते हैं कि उन्हें ज्ञात है कि धूम्रपान जानलेवा है पर इसके बावजूद वे ऐसा करते हैं।

कुछ लोगों का कहना है कि 'शराब और सिगरेट के बिना पार्टियों में रौनक नहीं आती, यह तो ख़ुशी मनाने का एक ज़रिया है'। तो मेरा सवाल उनसे यह है कि क्या ख़ुशी मनाने और ग़म भुलाने में एक वही चीज़ इस्तेमाल हो सकती है? यह सब बस एक बहाना है। अगर ऐसा है तब तो गुजरात, बिहार, केरल, मणिपुर और नागालैंड के लोग खुशियाँ मनाते ही नहीं होंगे, जहाँ सरकार ने शराब पर प्रतिबंध लगाया हुआ है। मैं इस बात को नहीं मानता क्योंकि मैं स्वयं बिहार से हूँ और मैंने शराबबंदी से पहले और बाद के बिहार को देखा है। पहले लोग शराब पीकर रात भर घर नहीं आते थे और सड़कों पर उत्पात मचाते थे पर अब वही लोग वक़्त पर घर आकर अपने परिवार के साथ समय बिताते हैं। सबसे बड़ी बात यह कि शराबबंदी के बाद घरेलू हिंसा काफ़ी हद तक कम हुई है। शराबबंदी के बाद बिहार में अपराध दर में 27% की गिरावट आई है। यह बात भी सत्य है कि शराब और सिगरेट पर प्रतिबंध लगाने से सरकार को भारी राजस्व का नुकसान होगा पर पटना के एक कैंसर विशेषज्ञ डॉक्टर चिरंजीव खंडेलवाल के शब्दों में "सरकार को इनसे होने वाली बीमारियों पर इससे ज्यादा राजस्व का नुकसान हो रहा है"। इन सब से छुटकारा पाने के कुछ उपाय भी हैं –

1) अक्सर जिन लोगों को इसकी लत लग जाती है उन्होंने नशामुक्ति केंद्र में जाकर ख़ुद में सुधार देखा है और यह सुधार किसी के दबाव से नहीं बल्कि ख़ुद के आत्मविश्वास और इच्छाशक्ति से आया है ।

2) सिगरेट में निकोटिन पाया जाता है और इससे छुटकारे के लिए 'निकोटिन गम', 'पैचेज़', 'इनहेलर' और 'स्प्रे' आदि का प्रयोग किया जाता है। इन चीजों की ख़ास बात यह है कि इनके इस्तेमाल से स्वास्थ्य को हानि बहुत कम होती।

3) 'बुपरोपिन' और 'वैरेनेक्लिन' जैसी दवाएँ भी काफ़ी कारगर साबित हुई हैं। इन दवाओं को प्राप्त करना मुश्किल भी नहीं है, ये आपके नज़दीकी दवा दुकानों में आसानी से मिल जाएँगी।

एक युवती ने अपने साक्षात्कार में बताया कि उन्होंने महज़ सुबह उठकर दौड़ने और व्यायाम करने से ही इस लत को छोड़ा है। यानी अगर हम एक संकल्प ले कि इस लत को छोड़ना है तो यह इतना मुश्किल भी नहीं है ।

"किसी भी देश की पहचान उसके युवा वर्ग से होती है और भारत की पहचान भी हम युवा वर्ग से ही है। अब यह हमें देखना है कि हम इसे 'स्वदेश' के शाहरुख खान के रूप में दिखाते है या 'देवदास' के।

-कृष्णन

धीरे-धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय ।
माली सींचे सौ घड़ा, ऋतु आए फल होय ॥
-कबीर

मानवता और हम

ईश्वर द्वारा बनाई गई इस अद्भुत प्रकृति में मनुष्य का एक अनोखा स्थान है। मनुष्य की रचना ईश्वर ने सबसे अनोखे ढंग से की है और दो बड़ी शक्तियाँ जो मनुष्य को ईश्वर द्वारा प्राप्त हैं वे हैं- बुद्धि और वाक् शक्ति। ये दोनों वरदान ही मनुष्य को जानवरों से अलग बनाते हैं तथा विश्व में मनुष्य का एक अनोखा अस्तित्व स्थापित करते हैं। परन्तु आज दुनिया में मानव तो विकास कर रहे हैं पर उनके अंदर की मानवता कहीं गुम हो गई है। स्वार्थ व ईर्ष्या ने आज प्रेम और स्नेह की भावना को कुचल डाला है। जैसा कि हम सभी जानते हैं कि कभी-कभी भारत-पाक की सीमा पर निर्दोष लोग भी मारे जाते हैं। इस विषय पर सब लोग अपने-अपने देश का समर्थन कर रहे हैं, सब लोग यही कह रहे हैं कि- "उड़ा डालो पाकिस्तान को"..."उड़ा डालो हिंदुस्तान को", परन्तु ये अभागे लोग इसका भविष्य नहीं जानते। किसी को किसी से कोई लेना-देना नहीं, किसी के हृदय में उन मासूम बच्चों के लिए करुणा भाव नहीं जो बेमतलब सीमा पर मारे जा रहे हैं। इनमें मैं और आप भी शामिल हैं।

यह सब कुछ मनुष्य पर निर्भर करता है कि उसे तबाही फैलानी है या फिर भाईचारे की भावना अपनानी है, परन्तु आज मनुष्य के हाथ मिलाने के लिए नहीं अपितु काटने के लिए बढ़ते हैं व दूसरों की खुशियाँ छीनने के लिए बढ़ते हैं। मनुष्य की गति हम आजकल सड़क पर भी देख सकते हैं...एक वृद्ध पुरुष को देखकर मुझे लगता है कि वह सड़क नहीं अपितु अपनी जीवन रेखा पार कर रहा है, वह भी एक दर्दनाक दुर्घटना के भय के साथ। आज सड़कों पर दुर्घटनाओं का संसार उमड़ पड़ा है... कई बच्चे अनाथ हो जाते हैं, कई माताओं की गोदें खाली हो जाती हैं व बहुतों के मंगलसूत्र टूट कर बिखर जाते हैं, पर हमारी गाड़ी की रफ़्तार कभी कम नहीं होती। हमारे हाथ कभी मदद के लिए नहीं बढ़ते क्योंकि हमें हर समय हर चीज़ की जल्दी होती है। यह असल में एक सोचनीय तथ्य है।

समय इतना बदल चुका है कि गरीबों को शिक्षा तो दूर, भीख भी नहीं मिल पा रही है। वे सड़कों पर हमेशा इधर-उधर रेंगते नज़र आते हैं। आज लड़कियों को घर से बाहर निकलने में भी सोचना पड़ रहा है और यदि निकल भी जाएँ तो भय उनकी परछाई की तरह साथ-साथ चलता है।

दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान।
तुलसी दया न छांड़िए, जब लग घट में प्राण॥
-तुलसीदास

माता-पिता को हमेशा अपने बच्चों की चिंता बनी रहती है। दुर्घटनाओं के इस विस्तृत सागर में करुणा व इंसानियत की नाव कहीं डूबती नज़र आ रही है। आख़िरकार यह कब तक चलेगा? कब तक छोटी बच्चियों के साथ दुर्व्यवहार होता रहेगा? कब तक माता-पिता अपनी आँखों में आंसू लेकर जिएंगे?..... आख़िर कब तक? आज मनुष्य इंसानियत त्याग कर व हैवानियत अपना कर सीना तान के खड़ा है और हम शांति दूत बनने में असमर्थ हैं। हमें अपनी सोच में बदलाव लाते हुए दूसरों के बारे में भी सोचना होगा क्योंकि जिन लोगों के साथ आज इंसान दुर्व्यवहार कर रहा है आख़िर वे लोग भी तो किसी के अपने हैं, उनका भी तो अपना कोई परिवार है। आपको भारत माता के एक ऐसे पुत्र के बारे में बताऊँ जिन्होंने अपना सारा जीवन बाल मजदूरों व गरीबों की मदद में समर्पण कर दिया। वे हैं- कैलाश सत्यार्थी। इन्हें 2014 में शांति के नोबेल पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। हमें उनके कार्यों का दर्शन अपनाना चाहिए- "अब नहीं तो कब और हम नहीं तो कौन?"

हमें बदलाव की शुरुआत ख़ुद करनी होगी, मदद के लिए सबसे पहले हाथ हमें ख़ुद ही बढ़ाने होंगे, इंसानियत सबसे पहले हमें ही अपनानी होगी। और महिलाओं के प्रति जो दुर्व्यवहार हमारे समाज में बढ़ रहा है इसकी रोकथाम भी हमें ख़ुद ही करनी होगी। महिलाओं को सम्मान के साथ समाज में एक बराबर का दर्जा देना होगा व अपनी सोच में बदलाव लाते हुए उनके सम्मान के लिए ज़रूरत पड़ने पर उनके साथ खड़ा होना होगा। हिंसा बढ़ने से पहले ही हमें अमन का रास्ता अपनाना होगा, क्योंकि-
" तलवार से हम सिर्फ़ एक भूमि का टुकड़ा जीत सकते हैं, परन्तु करुणा व प्रेम से समस्त संसार जीता जा सकता है।"

- कौशल पाटीदार

इस बात में कोई दो राय नहीं है कि हमारा यानी नब्बे के दशक के बच्चों का बचपन एक ऐसी ख़ूबसूरत याद है जिसे भुलाना तो खैर मुमकिन नहीं ही है, पर उसकी तुलना किसी और चीज़ से करना भी उसका अपमान ही होगा। तो आपकी उन्हीं यादों को ताज़ा करने की हमारी एक छोटी सी कोशिश है, देखते हैं आपने वो लम्हे किस तरह संजो कर रखे हैं।

1.
कुण्डलिनी जागृत करे जब कोई इंसान,
तभी अपरिमित शक्ति का होता उसको ध्यान,
सूर्यवंशी कहलाता है, शत्रु है तमराज,
गंगाधर ने छुपा रखा इसका सारा राज़।

2.
दक्षिण में है बसा हुआ एक अनोखा गाँव,
स्वामी दोस्तों संग खेले, फ्रेड्रिक लॉली की छाँव,
एक दुकान मिठाई की, गाइड भी डेरा डाले,
यहाँ हैं आर. के. नारायण के किस्से कई निराले।

3.
पॉकेट मनी बचाई भी, लेनी पड़ी उधारी,
तब जाकर घर आए सुपंडी और शंभू शिकारी,
तंत्री-मंत्री और रघु की कथा अमर रह जाती,
बोलो-बोलो बचपन की वह कॉमिक क्या कहलाती।

4.
हुई-लुई-डुई की शैतानी, अंकल एक खड़ूस,
पैसे का अम्बार है लेकिन हैं कंजूस,
डॉनल्ड के संग डेज़ी भी, सीरियल का क्या नाम,
इनसे ही होती शुरू बचपन की हर शाम।

5.
कंप्यूटर क्या चीज़ है, देखो इनका ब्रेन,
हरदम इनके साथ रहे जुपिटर की एक देन,
राका जैसे गुंडों से लड़ना इनका काम,
बच्चा-बच्चा जानता है चाचाजी का नाम।

उत्तर: 1.शक्तिमान, 2.मालगुडी डेज़, 3.टिंकल, 4.डक टेल्स, 5.चाचा चौधरी

घर को खोजें रात दिन घर से निकले पाँव।
वो रस्ता ही खो गया जिस रस्ते था गाँव॥
- निदा फ़ाज़ली

प्रेमचंद के फटे जूते

समय के साथ लगभग हर चीज़ अपना प्रभाव खो देती है, सिवाय कुछ रचनाओं के। ऐसी ही कालजयी रचनाओं में से एक रचना है हरिशंकर परसाई जी का लेख 'प्रेमचंद के फटे जूते'। इस लेख में परसाई जी ने मुंशी जी के एक चित्र मात्र से ऐसे कुछ बातें ढूंढ निकाली हैं जो इतने सालों बाद भी समाज की मनोदशा पर करारा प्रहार करती हैं। ये दिखाती हैं कि जैसे सालों पहले लोग दिखावे के चक्कर में इंसानी मूल्य खोते जा रहे थे, वैसे ही आज भी लोग दिखावे में ही अपना पूरा जीवन लगा देते हैं। लोग इस हद तक दिखावे और झूठी इज़्ज़त बनाने में लगे हैं कि वे सही और गलत में अंतर भूल जाते हैं। इस लेख में वर्णित है कि लोग 'जूते' के चक्कर में 'टोपी' को भूल जाते हैं। यानी कि लोग समृद्धि व दिखावे के चक्कर में अपने मूल्य भूल ज्ञाते हैं। उसमें लिखा है कि लोग अपने तलवे छिपा लेते हैं लेकिन अंगूठा नहीं दिखाते। अर्थात् लोग भले ही कितनी भी पीड़ा में हो लेकिन वो दुनिया के सामने यही दिखाने का प्रयास करते हैं कि उनकी ज़िन्दगी खुशहाल है। आज के ज़माने में अगर किसी के सामने कुछ गलत भी हो रहा हो तो वह उसमें हस्तक्षेप नहीं करेगा ताकि उसपर कोई दाग न लग जाए। मुंशी जी का उदहारण लेकर यह भी दर्शाया गया है कि ऐसे भी लोग हैं जो दिखावे की संस्कृति में विश्वास न रखते हुए, अपने जीवन रूपी उपहार का सदुपयोग करते हैं। ऐसे लोगों को जीवन में कोई पछतावा नहीं रहता। उन्हें पता है उन्होंने कभी गलत का साथ नहीं दिया और ना उनके पास कुछ छुपाने को है। वो जैसी ज़िंदगी जिए, वही दुनिया ने देखी। इसके विपरीत दिखावे में अपना समय व्यतीत करने वालों ने अपना जीवन व्यर्थ कर दिया और साथ ही साथ सही-गलत में भेद भी नहीं रख पाए। इस लेख में एक सीधा संदेश यही दिया गया है कि हमें भी मुंशी जी से सीख लेते हुए दिखावे में अपना समय व्यर्थ न करते हुए समाज के प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहिए और अपने जीवन को एक अर्थ प्रदान करना चाहिए।

परशुराम की प्रतीक्षा

'परशुराम की प्रतीक्षा' 'दिनकर' जी ने भले ही भारत-चीन युद्ध के दौरान लिखी हो, परन्तु इसमें लिखी हर बात आज भी उतना ही मूल्य रखती है, जितना तब। क्योंकि यह कविता मात्र न होकर एक दोषारोपण है उन अहिंसा का चोगा ओढ़े राजनीतिज्ञों को, जो क्रमों के बजाय स्वार्थ पर ध्यान देते हैं। जिनके कारण देश की रक्षा के महायज्ञ में आहुति देने वाले वीरों का रक्त व्यर्थ हो रहा है। एक प्रश्न है कि क्यों जब वीरता की आवश्यकता थी, तब अहिंसा और कायरता का पथ चुना गया। एक धिक्कार है उन आम नागरिकों को जो देश के उत्थान हेतु सजग नहीं हैं, और अपने कार्य में अकर्मठता दिखाते हैं। एक आह्वान है उन सभी वीर योद्धाओं को, कि इस प्रलय घड़ी में वे अपना पौरुषबल दिखाएँ और राष्ट्रहित हेतु आगे आएँ। साथ ही एक क्षमा याचना है उन क्रांतिकारियों से जिनके त्याग का यह देश उचित आदर न दे सका। एक आशा है कि एक नेता फिर से आएगा और भारत को फिर से विश्वगुरु बनाने का स्वप्न पूरा करेगा। एक ललकार है शत्रुओं के लिए कि भारत अपनी शक्ति वापस पा चुका है, यदि साहस हो तो आएं और युद्ध में हरा कर दिखाएँ। यह भारतीयों के छोटी सोच वाली ज़िन्दगी जीने पर एक आपत्ति है और एक आमंत्रण है कि देश के विकास हेतु योगदान करें और भयमुक्त वीरों सा जीवन जिएँ। यह पूरी कविता हर भारतवासी को एक सन्देश है कि अपने अन्दर की ज्वाला बुझने न दें। राष्ट्र को प्रगति पथ पर लाने हेतु स्वयं में उत्थान लाना होगा। वीरत्व और त्याग के गुणों का संचार करना होगा। हर एक को परशुराम की तरह ब्राह्मण धर्म छोड़ कर क्षत्रिय धर्म निभाना होगा। करीब छः दशकों से चली आ रही यह प्रतीक्षा कब ख़त्म होगी? यही प्रश्न चिह्न इस काव्य को अमरत्व देता है और कालजयी बनाता है।

आपका बंटी

कुछ रचनायें ऐसी होती हैं कि हमेशा के लिए अमर हो जाती हैं। वे अपने अंदर एक ऐसा मुद्दा या संदेश लेकर सामने आती हैं जो सालों तक समाज की दास्तान सुना सकता है। ऐसी ही एक रचना है मन्नू भंडारी की "आपका बंटी"। ये उपन्यास एक साथ इतने सारे विषयों के बारे में बात करता है कि एक पल के लिए पाठक सोचने पर मजबूर हो जाए कि अगला आँसू किसके लिए गिराए। जहाँ एक तरफ एक स्त्री को अपने पैरों पर खड़े होने की कोशिश में कितने ही कांटों का सामना करना पड़ता है, वहीं दूसरी तरफ एक बच्चा अपने जीवन की दो सबसे बड़ी दौलतें, माँ और बाप को अलग होते देख कारण तो नहीं समझ पाता लेकिन दर्द जरूर महसूस कर पाता है। यह उपन्यास मुख्यतः समाज के दो मुद्दों पर आवाज़ उठाता है। एक तो स्त्रियों के हालात पर और दूसरा आज के ज़माने में तलाक़ों की बढ़ती संख्या से बच्चों पे पड़ने वाले असर पर। एक तरफ जहाँ माँ शकुन आत्मनिर्भर होने के प्रयास में अपने पति से दूर होती जा रही है, वहीं बंटी अपने माँ-बाप को अलग होते देख टूटता जाता है। लगभग पचास साल पहले लिखा हुआ यह उपन्यास इतने संवेदनशील मुद्दों पर आज भी जैसे प्रभाव डालता है, वह अविश्वसनीय है। ध्यान से देखें तो इस कहानी में ढेर सारी परतें हैं। एक परत में जहाँ एक युगल के अलगाव को दर्शाया गया है वहीं दूसरी परत में बच्चे का खुद का टूटना भी है। ये बातें तो प्रत्यक्ष हैं। एक यह चीज़ जो विरले किसी के समझ में आती है, वह यह है कि कैसे बच्चा अपने माँ-बाप की मनोदशा नहीं समझ पाता और कैसे माँ-बाप बच्चे की भावनाओं पर ध्यान नहीं देते। ये बातें आज के समाज में भी इतनी सटीकता से अपनी जगह बनाती हैं कि इंसान सोचने पे मज़बूर हो जाये। यही बातें इस रचना को कालजयी बनाती हैं।

साये में धूप

समाज और राजनीति की विसंगतियाँ हर काल में रहेंगी, और उनके समाधान भी हर युग के लेखक दे जाते हैं। परन्तु वे समाधान सिर्फ़ उस वक़्त ही नहीं बल्कि आगामी समय के लिए भी उतना ही कारगर साबित होते हैं। 'साये में धूप' ग़ज़ल दुष्यंत कुमार की क़लम से निकली ऐसा ही एक बेहतरीन शाहकार है। सियासी हालातों और देश की व्यवस्था पर व्यंग्य करते हुए दुष्यंत कहते हैं कि हर बार चुनावों में लोगों को विकास का स्वप्न दिखाया जाता और फिर एक झटके में सारे वादे तोड़ दिए जाते हैं। दोषियों का न्यायपालिका के चंगुल से छूटना भी कोई नयी बात नहीं। हमेशा से यह हो रहा है। और शायद यही वजह है कि इस वतन के लोगों को यातनाएँ और अत्याचार सहने की इतनी आदत हो गई है कि इसके हिसाब से वे .ख़ुद को ढाल लेते हैं। फिर भी उनकी आँखों में एक सपना है, जो उनके लिए उनका भगवान है। जो उन्हें आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है। चाहे काल कोई भी हो, हालात वही रहते हैं, हमेशा। एक उम्मीद हमेशा बनी रहती है कि ऐसे माहौल में जहाँ लोग बदलाव की हर आशा को छोड़ चुके हैं, लोग अपनी आवाज़ उठाएंगे, और तब्दीली लाएँगे। शासन सदैव ही लोगों की आवाज़ को दबाता आ रहा है। तो आवाज़ उठाने वाले के लिए यह ज़रूरी है कि सावधानी बरते ताकि उसकी बात सही तरीके से लोगों तक पहुंचे। और जाते-जाते ज़िंदगी जीने की एक अनमोल सीख देते हुए दुष्यंत कहते हैं जीने का असली मज़ा अपनी ज़मीन में ही है। अपने आसपास एक बेहतर समाज में जिएँ और मृत्यु हो तो इसी समाज में एक उत्कृष्ट छवि के साथ हो। कितनी सीधी-साधी बातें है, जो कल भी उतना ही मायने रखती थीं, जितना कि आज। और शायद यही साधारण सा, किन्तु एक विशेष ख़याल इस रचना को बनाता है कालजयी।

तुम प्यार हो या पागलपन हो

तुम निपट अकेली रात में गुमनाम सी एक उजियाली हो,
तुम भोर में जैसे सूरज की पहली-पहली सी लाली हो,
तुम भरी दुपहरी में जैसे एक नींद की आती झपकी हो,
जब शाम ढले तो राग यमन सी चिड़ियों की किलकारी हो।

तुम प्यार हो या पागलपन हो हर चीज़ में जो दिख जाती हो,
नज़र के हर एक पहलू में हर जगह नज़र आ जाती हो।

तुम शीत ऋतु की ठंडक में सूरज का एक झरोखा हो,
तुम तपती जलती गर्मी में सर्द हवा का झोंका हो,
तुम पहली बारिश में भीगी कुसुम की कोमल कालियाँ हो,
तुम पतझड़ में जैसे पल्लव से लिपटी शहर की गलियाँ हो।

तुम प्यार हो या पागलपन हो हर चीज़ में जो दिख जाती हो,
नज़र के हर एक पहलू में हर जगह नज़र आ जाती हो।

पूर्णिमा की रात के सागर में तुम चाँद की एक परछाई हो,
तुम झरने झील की आहट पर एक मंद-मंद रुबाई हो,
तुम श्वेत बर्फ़ की वादी में बादल की एक अंगड़ाई हो ,
तुम रेगिस्तान की रेतों पर मृगतृष्णा-सी सच्चाई हो।

तुम प्यार हो या पागलपन हो हर चीज़ में जो दिख जाती हो,
नज़र के हर एक पहलू में हर जगह नज़र आ जाती हो।

-अर्चित रॉय

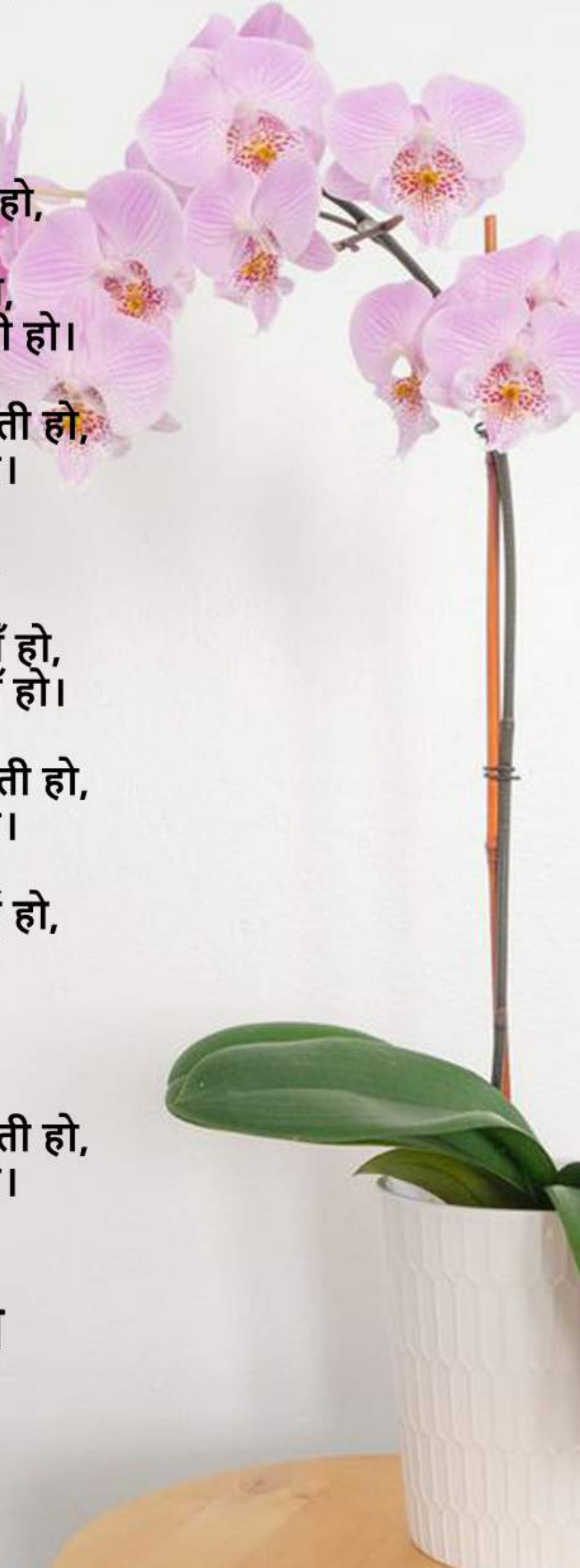

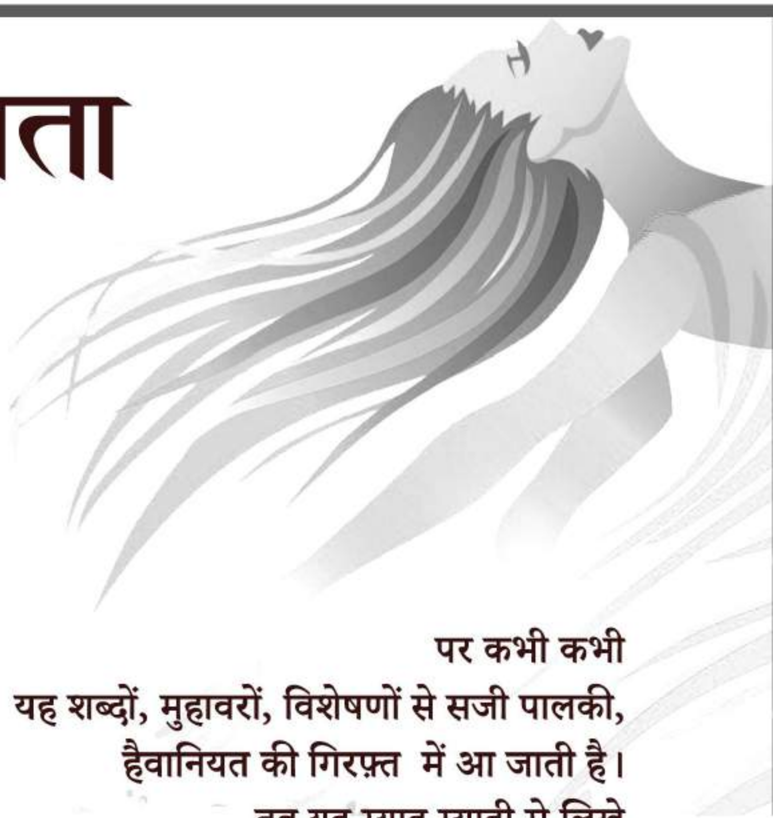

कविता

कविता स्त्रीलिंग है।
आप कहेंगे जी हाँ बिल्कुल,
कविता लिखी जाती है, कविता लिखा नहीं जाता।
नहीं, आप समझे नहीं,
मैं कह रहा हूं,
कविता स्त्रीलिंग है...

यह काग़ज़ पर
अक्षर एक दूसरे का हाथ थामे खड़े हैं,
हलंत, पूर्ण विराम, अल्प विराम
सब अपने निर्धारित स्थान पर अड़े हैं।
रह रह कर
यह सब मिल जुल कर
पाठक के बालों को सहलाते हैं,
शब्द, भावना और अपनेपन की
माँ सी ममता भरी गोद में
हम सर रख सो जाते हैं।
कविता स्त्रीलिंग है...

एक कवि जो
अपने अंदर विचारों का तूफ़ान लिए चलता है
वो पीड़ा, वो परेशानी बांट नहीं सकता किसी के साथ,
बस आँखों में जज़्बात लिए चलता है।
तब कविता उसका हाथ थामने आती है,
उसके करीब बैठ
अपना अक्स छोड़ उसकी सांसों में घुल जाती है।
अपने अस्तित्व, अपने नाम की परवाह भी कहाँ,
कविता पूर्ण रूप से कवि की बन जाती है।
कविता स्त्रीलिंग है...

पर कभी कभी
यह शब्दों, मुहावरों, विशेषणों से सजी पालकी,
हैवानियत की गिरफ़्त में आ जाती है।
तब यह स्याह स्याही से लिखे
काग़ज़ पर बिखरे शब्द विद्रोह पर निकल पड़ते हैं।
सब एक जुट होकर एक काले धब्बे का आकार लेते हैं,
उम्र भर का ज़ख़्म बिना किसी से बांटे झेल जाती है,
कविता कभी कभी खामोश रह जाती है ।
कविता स्त्रीलिंग है...

यह सिर्फ़
शब्द नहीं बिखरे पड़े हैं
कागज़ पर,
यह कभी समाज के पापों से
लड़ती तलवार है,
तो कभी ज्ञान का भंडार।
कविता ही गीता का सार है,
कविता ही माँ सरस्वती का अवतार।
ध्यान से सोचो,
कविता स्त्रीलिंग है...

-मृदुल 'मुसाफ़िर'

तस्वीर

इलाहाबाद की चंचल दुपहरी सी तेरी मुस्कान,
देहरादून की वादी तेरी आंखों में नूर-ए-जान।

तू जुल्फें बिखेरे तो अवध की शाम लगती है,
तेरे होठों की मस्ती लखनवी अंदाज़ लगती है।

बनारस के वो मीठे पान की जो याद आती है,
तेरे होठों की वो लाली, बहुत हमको सताती है।

केसर सी पलक हैं, और जैसे झील है आंखें
मैं इनपर क्या लिखूं जो हैं कश्मीर सी आंखें!

फ़िरोज़ाबाद के कंगन, कोई भोपाल सा कजरा,
बड़ा हमको सताता है, बरेली का तेरा झुमका।

अपने शहर को छोड़ कर परदेस जो आए,
परदेस आकर भी तुमको भूल ना पाए।

परदेस में शहरों की जब भी याद आती है,
आंखों के आगे बस तेरी तस्वीर आती है।

-अधीश बंसल

हार, जीत और तुम

-गगन

आज हार गया, तू ये मान मत,
हर बार जीतेगा, तू ये ठान मत,
हार से क्या सीख चुका है,
ना कर उसे बग़ावत।

तू जान गया है अपने डर के बारे में,
तू जीतेगा डर के उसी किनारे पे,
ये तो बस आग़ाज़ है, उस परचम का
जो तू लहराएगा अपने दिल के पास में,
अंजाम तो सब देखेंगे,
बोलने वाले तो बोलेंगे,
तेरे जीत पर वे क्या ही बोलेंगे?

तू खो चुका है अपने वजूद को,
भरते भरते लोगों की मांगों को।
यह ग़लती नहीं एक गुनाह है,
अपने आप को भूल के तू ख़ुद से जुदा है।

तू हार नहीं सकता, जब तक तू तू है,
तूझे दूसरों की तरह बनना क्यों है?
तूझे दूसरों की तरह बनना क्यों है?

तुम्हारे नाम की कविता

-पीयूष शिवम्

यहाँ अल्फ़ाज़ में हिंदी के संग उर्दू भी मिलती है,
यहाँ उन्वान से एक अलग-सी ख़ुशबू भी मिलती है,
यहाँ शब्दों से तेरा एक ख़ाका खींचता हूँ मैं,
सभी पन्ने सियाही से हमेशा सींचता हूँ मैं,
ये कोशिश है, तुम्हारे वास्ते कविता लिखी जाए,
बहुत बातें हैं, होंठों की जगह क़लमों से की जाए,
ज़रा-सा सब्र कर लो तुम कि थोड़ा काम बाकी है,
अभी कविताओं को देना तुम्हारा नाम बाकी है।
मगर पन्ने ख़यालों के, मुकम्मल कर के जाऊँगा,
तुम्हारे नाम की कविता, मैं तब तुमको सुनाऊँगा,
वो दिन आएगा इक दिन, मुझको ये उम्मीद पूरी है,
मगर तब तक तुम्हारे नाम की कविता अधूरी है।

तुम्हारे नाम की कविता अभी तक क्यों अधूरी है?
तुम्हे यह बात बतलाना प्रिये, बेहद ज़रूरी है,
मेरी कविता में उल्फ़त है, कमर का लोच सुंदर है,
तेरे नखरे, घनेरी ज़ुल्फ़ की यह सोच सुंदर है,
मगर जब ये किनारे छोड़ मैं उस पार जाता हूँ,
तो रंजिश के तूफ़ानों से हमेशा हार जाता हूँ।
वहाँ पर भुखमरी, ग़ुरबत के साहिल पर पटकती है,
मैं वो सब लिख नहीं पाया, ये बात अक्सर खटकती है,
तेरी बाहों, तेरी छाती से आगे दिखा नहीं पाया,
लहू से ख़त लिखे थे पर लहू पर लिख नहीं पाया,
ज़माने को हर इक शायर से कितनी ही उमीदें हैं,
और एक मैं हूँ कि बस लिक्खे मुहब्बत के क़सीदे हैं,
हक़ीक़त और ख़्वाबों में जो दूरी है समझ जाना,
इसी कारण से यह कविता अधूरी है समझ जाना।

मगर अब आसमां लाकर ज़मीं से जोड़ दूँगा मैं,
तेरी पहले बनी तस्वीर सारी तोड़ दूँगा मैं,
तेरी ज़ुल्फ़ों को सरहद की लकीरों से बनाऊँगा,
तुम्हारी मांग में काँटों का इक टीका सजाऊँगा,
तेरी आँखों में झुग्गी-बस्तियों के ख़्वाब भर दूँगा,
तेरे चेहरे पे तरह-तरह के तेज़ाब भर दूँगा
तेरी साँसों में जलती टायरों की बू भी होनी है,
तेरे होंठों पे 'जय श्री राम', 'अल्लाह-हू' भी होनी है,
तेरे दांतों को दूजे जिस्म का टुकड़ा चबाना है,
गला तेरा ज़बरदस्ती से रेता भी तो जाना है,
तेरे कंधों पे झूठी हसरतों का भार दे दूँगा,
ये नंगा जिस्म ढकने को फटा अख़बार दे दूँगा,
वो सारी क़त्ल की ख़बरें बुलंद आवाज़ में पढ़ना
और अपने कोख में पलते हुए भारत को तुम गढ़ना
और एक दिन आएगा जब वो मरा बच्चा जनम लेगा
जो मैं लिखा भी पाया तुम्हें वो सारे ग़म देगा
है मेरी इल्तिजा इतनी कि ये दिन रोक लेना तुम
बची जितनी भी है ताकत वो सारी झोंक देना तुम
मेरी वहशी कलम को जिस किसी दिन दर्द ना दिक्खे
वो केवल प्यार, केवल प्यार, केवल प्यार पर लिक्खे,
उसी दिन एक नई सूरत तेरी फिर बनकर आयेगी,
तुम्हारे नाम की कविता तभी अंजाम पायेगी।
तुम्हारे नाम की कविता तभी अंजाम पायेगी।

एक कविता

-आतिफ़ अज़ीज़

रोज़ मैं एक कविता लिखने के बारे में सोचता हूँ,
दिन ख़त्म हो जाता है
और कविता शुरू भी नहीं होती,
पर आज पक्का कुछ लिखूँगा!
अपनी मेज़ क़रीने से सजाकर मैं बैठ गया,
एक नई कविता लिखने।
शीर्षक -
पहले कविता पूरी हो जाये
फिर शीर्षक दूँगा।
कुर्सी पर बैठा
मैं उस सफ़ेद कोरे काग़ज़ को
देखने लगता हूँ
क्या लिखूं?
क्या लिखूं?
इसी उधेड़बुन में पड़े,
उस कोरे काग़ज़ को देखते हुए,
मैं अपने कमरे की
सफ़ेद दीवार के बारे में सोचने लगता हूँ,
दीवार पर से गिरती हुई पपड़ी
हमेशा एक चित्र बनाती है,
कभी कबूतर, कभी कुत्ता,
कभी पेड़ - हमेशा कुछ नया।
वो कभी मेरा चित्र क्यूँ नहीं बनाती?
मैं सोचता हूँ कि अगर मैं कबूतर बन जाऊँ तो?
काश! कितना मज़ा आएगा कबूतर बन कर!
पूरे दिन नीले आसमान में उड़ते रहो,
न स्कूल की टेंशन, न होमवर्क की,
बस पूरे दिन आसमान में मौज करो।
मुझे आसमान बहुत पसंद है,
मैं उसे छूना चाहता हूँ।
एक दिन जब मैं बड़ा हो जाऊँगा,
अब्बा से भी बड़ा तो
मैं ऐसे हाथ से आसमान को छू लूंगा।
कितना मज़ा आएगा न!
और इतना ही नहीं,
मैं आसमान में उड़ रही
सारी पतंगों को भी काट लूंगा

सबसे पहले मैं उस किशन की पतंग काटूंगा,
वो हमेशा मेरी पतंग काट देता है,
एक बार मैं उसकी पतंग काट ही देता मगर,
अम्मी ने घर बुला लिया
और उसकी पतंग बच गयी।
पता नहीं अम्मी को
मेरे खेलने से क्या परेशानी है,
हमेशा घर में बुला लेती हैं
और पढ़ने बिठा देती हैं।
मैं पढ़ने बैठ जाता हूँ,
मगर कुर्सी बैठा मैं फिर से पतंग उड़ाने लगता हूँ,
और इस बार मैं किशन की सारी पतंग काट देता हूँ!
कुर्सी!
देखा, हमेशा की तरह में इस बार भी
पतंग, कबूतर और आसमान में खो गया!
दिन ख़त्म होने को है,
और इस बार भी कविता का कुछ पता नहीं,
कोई बात नहीं, कल मैं पक्का एक कविता लिखूंगा!

चमक

- कौशल पाटीदार

बातें हम दोनों में,
आँखों से हो रही थी।
कुछ मैं कह रहा था,
कुछ वो कह रही थी।
चमक उसकी आँखों की,
मैं बयां नहीं कर सकता।
जवाब हाँ या ना होगा;
इसे मैं खोज नहीं सकता।
शायद तुम कुछ कहने वाली थी?
जो मैंने सोच रखा वो हो नहीं सकता।
उसकी पंक्ति में मेरा ही ज़िक्र होगा,
दिल ये उम्मीद अब खो नहीं सकता।
उन आँखों में मुझे,
कुछ उम्मीद सी दिखी।
कुछ अपनापन दिखा।
जो कह रहीं थीं...
कि क्या हम कुछ बात कर सकते हैं?
अधूरी इस कहानी को
अपने साथ कर सकते हैं?
क्यों खड़े हो इतने दूर तुम?
कुछ क़दमों से ये दूरी शायद
कम कर सकते हैं।
पर, न उसने कभी कुछ कहा;
न मैं कुछ कह पाया।
क्या सोचेगी मेरे बारे में,
मैं इससे नहीं निकल पाया।
पर इस बार जब मैं उससे मिलूंगा,
कम से कम एक 'Hello' कह दूंगा;
पर डर भी है इस बात का.. कि,
कहीं कुछ ग़लत तो नहीं कह दूंगा।
इसलिए मैं सिर्फ़ अब शांत रहता हूँ;
हमेशा तुम्हारी आँखों से ये कहता हूँ।
कि ऐसे ही देखती रहो मुझे;
उस चमक में, कहीं न कहीं शायद मैं रहता हूँ।

अनकही बात

ये कुछ उन दिनों की बात थी,
जिन दिनों तुम साथ थी;
तुम्हारे लबों पे जो मिठास थी,
ये कुछ सपनों जैसी बात थी।
दिल की बात तो साफ़ थी,
बस कहने की दरकार थी;
जो बीती बरसात थी,
ये बस कुछ ही दिनों की तो बात थी।

कुछ गर्मी की बात थी,
कुछ सर्दी की बात थी;
पर तेरी बाहों में जो रात थी,
वो जन्नत से भी ख़ास थी।
जो वो एक सुनहरी मुलाक़ात थी,
मानो कल की ही तो बात थी।
ये उन दिनों की बात थी;
जबयूनिफ़ॉर्म वाली जमात थी।
जमात की एक लड़की ख़ास थी;
जिसकी आखों में क़ायनात थी।

उस लड़की में जो बात थी,
बस लड़ती वो बेबात थी।
नज़रें परेशानी में क्यों पड़ जाती थीं,
वो जब नज़र में आ जाती थी।
वहीं नज़रे ठहर सी भी जाती थी;
जब वो एक नज़र मुस्काती थी।
वो मुस्कान दिल के पास थी;
दिल की वहीं आवाज़ थी।
पर दरमियां एक दीवार थी;
और वो दीवार के उस पार थी।

- हर्ष मिश्रा

कुछ बाक़ी है

कुछ ख़्वाब अधूरे पलकों पर,
कुछ नींद का आना बाक़ी है,
कुछ तेरी सी मीठी यादें,
अभी उनको सुलाना बाक़ी है।

वो फूल बगीचों से रूठा,
रूठा सा रहता शायद,
हम टूट गए हैं शाख़ों से,
फिर भी मुरझाना बाक़ी है।

वो बे दिल ही आबाद रहा,
हम दिल-ए-शहर बर्बाद हुए,
सब उसकी सूरत के क़ायल,
सीरत दिखाना बाक़ी है।

आंखें उसकी नम,
गुम सुम सी लगती हैं,
बेचैनी तो यूहीं निकल जाए,
सिगरेट जलाना बाक़ी है।

चांद को चकोर मिल गया,
बूंदों को रोशनी मिल गई,
दिल तो हम लगा बैठे,
इज़्ज़त गवाना बाक़ी है।

बिन आंखों से आंख मिलाएं,
बातें मैं हज़ारों करूंगा,
सच तो तुम मान ही लोगे,
कसमें खाना बाक़ी है।

तेरी यादों का मेला हो गया,
मैं फिर आज अकेला हो गया,
दिल जो अब तोड़ ही दिए ,
मुझे शायर बनना बाक़ी है।

- कुनाल अग्रवाल

परिचय

गुलज़ार

(18 अगस्त 1934)

फ़िल्मों में लिखने से पहले 'गुलज़ार' बम्बई की एक गैराज में पेंट का काम किया करते थे। 1973 में आई उनकी फ़िल्म 'कोशिश' एक मूक-बधिर जोड़े की कहानी बयान करती है।
उनकी भावनाओं को सही तरीके से पर्दे पर दिखाने के लिए गुलज़ार साहब ने बाक़ायदा मूक-बधिरों की भाषा सीखी। उसके बाद वे मूक-बधिरों के उत्थान में योगदान देने लगे।
अपने पिता के इन्तक़ाल की ख़बर गुलज़ार को दो दिन बाद मिली। फ़्लाइट के पैसे न होने के कारण गुलज़ार ट्रेन से 24 घंटे की यात्रा करने के बाद दिल्ली पहुँचे। तब तक उनके पिता को सुपुर्द-ए-ख़ाक किया जा चुका था। पाँच वर्ष बाद, अपने प्रिय बिमल रॉय के निधन पर इन्होंने उनका और अपने पिता का अंतिम संस्कार साथ में किया।

माँ

तू रागिनी अंतस की ,
तू ही राग अनाद,
तू पीपल सी पावनी,
तू सावनी आह्लाद।
तू गंगा सी पवित्र,
यमुना सा तेरा नाद,
तू ही शक्ति ,
तू ही भक्ति,
तू ही दाता, भाग्यविधाता है।
तू सागर से गहरी
अम्बर से भी तू ऊंची है।
तू अवनि से भी विशाल,
तू ही हर मुश्किल में मेरा ढाल।
तू प्रार्थना से प्यारी,
तू आरती से भी न्यारी,
तू देवों की भी देवतुल्य,
तू महादेव से भी अतुल्य।
तेरे चरणों में थे राम,
तेरे रज से चारों धाम।
मेरी खातिर, मेरी खातिर
तू महाकाल से भिड़ सकती है,
यम से भी लड़ सकती है।
तू सरस्वती को शिक्षा दे ,
तू लक्ष्मी को भिक्षा दे।
ब्रम्हा को दे ज्ञान धर्म का,
विष्णु को दान यज्ञ का।
तू वक्रतुण्ड के पहले है,
तू सब सुखों के एहले है।
तुझे कैसे मैं याद करूँ,
कितने शब्द ईजाद करूँ ।
हे मां! मैं कितना इस दिल से
तेरे लिए फ़रियाद करूँ।

-कुणाल सिंह

परिचय

रामधारी सिंह 'दिनकर'
(23 सितम्बर 1908 - 24 अप्रैल 1974)

लाल किला कवि सम्मलेन में 'दिनकर' राष्ट्रकवि होने के कारण अध्यक्षता के लिए बुलाए जाते थे। एक बार नेहरू जी उस कवि सम्मलेन के मुख्य अतिथि हुए। सारे माननीय कवियों के साथ मंच पर चढ़ते समय भूलवश नेहरू जी का पैर सीढ़ियों पर डगमगा गया। तभी 'दिनकर' जी उनका हाथ पकड़ कर उन्हें गिरने से सम्हाल लिया। मंच पर बैठते-बैठते नेहरू जी ने 'दिनकर' से कहा कि धन्यवाद आपने मुझे सम्हाल लिया। इसपर 'दिनकर' बोले कि इसमें कोई धन्यवाद वाली बात नहीं। राजनीति जब जब लड़खड़ाती है, कविता और साहित्य ही उसे संबल देता है। 'दिनकर' जी की चेतना का मूल मंत्र यही था।

परीक्षा

प्रस्तुत कहानी हिंदी लिट्रेरी एसोसिएशन द्वारा आयोजित रचनात्मक लेखन प्रतियोगिता 'स्पर्धा-2020' की सर्वोत्तम रचनाओं में से एक है।

"हां मम्मी... मैं पहुंच गई हूं, हां मम्मी मुझे रास्ते में कोई दिक्कत नहीं हुई थी। हां बिल्कुल, मैंने खाना खा लिया था। अरे हां मम्मी! मैं रिक्शा में बैठ गई हूं, आराम से हॉस्टल पहुंच जाऊंगी। आप चिंता ना करो। आप भी ना मम्मी, मैं थर्ड ईयर में पहुंच चुकी हूं और आप मुझे अभी भी बच्चा समझ रही हैं। ठीक है, अच्छा, मम्मी बाय।"
"...उफ्फ, ये मम्मी भी ना!" निष्ठा हॉस्टल वापस जाते समय रिक्शा में बैठे-बैठे सोच रही थी। अपने घर से लाई उन मीठी-मीठी यादों के बारे में। दूरदराज के रिश्ते वाले और अड़ोसी पड़ोसी अब उसे कितना मानते हैं और माने भी क्यों ना! आखिर मैं आईआईटियन जो हूं। आईआईटी जेईई, सिर्फ एक परीक्षा, उसकी जिंदगी के लिए कितनी महत्त्वपूर्ण थी जो कि उसने पास की थी। आखिरकार इस परीक्षा को निकालने की वजह से लोग उसे इतना बुद्धिमान समझने लग गए थे और आख़िर वह अपनी ड्रीम जॉब; माइक्रोसॉफ्ट में नौकरी करने के एक क़दम और पास आ गई थी।

निष्ठा मन ही मन सोच रही थी कि यह नया साल है; थर्ड ईयर इसमें मुझे कुछ तो नया करना है, फर्स्ट ईयर में मैंने कुछ ख़ास नहीं किया था, सेकंड ईयर में भी बस कुछ नई रोबोट टेक्नोलॉजी सीखी है, अब मुझे कुछ नया करना है। क्या करूं, अम्म्म...मैं कोई सोशल सर्विस ऑर्गेनाइजेशन का हिस्सा बन जाऊं? कुछ भी कहो, मेरा मन भी थोड़ा कहीं और लगेगा, थोड़ा लोगों से संवाद भी बढ़ेगा। बढ़िया आईडिया है। चलो आज ही मैं सीनियर से पूछ कर अपने कॉलेज से जुड़े किसी सामाजिक सेवा संस्था का हिस्सा बन जाती हूं। यह सोचकर निष्ठा ने कुछ सीनियर से पूछा, कुछ इंटरनेट से खोजबीन की और एक सामाजिक संस्था का हिस्सा बन गई जो कि कुछ गांवों में जाकर गरीब बच्चों को पढ़ाने का काम करती थी। अब निष्ठा भी उसमें एक स्वयंसेवक बन गई जो हर रविवार सुबह एक गांव 'पटिया' में जाकर पढ़ाएगी, निष्ठा काफ़ी खुश थी और एक्साइटेड भी, यह सोच कर कि वह कोई नया और अच्छा काम करने जा रही है।

"हज़ारों ख़्वाहिशें ऐसी कि हर ख़्वाहिश पे दम निकले
बहुत निकले मिरे अरमान लेकिन फिर भी कम निकले"
-मिर्ज़ा ग़ालिब

आज संडे का दिन है। कॉलेज की ज़िंदगी में लगभग पहली बार निष्ठा को आज संडे की सुबह को थोड़ा ज़ल्दी उठना पड़ा। आखिर उसे साइकिल से अपने एक-दो साथी और सीनियर के साथ 'पटिया' नामक गांव जाना था। गांव उसके कॉलेज से करीब बारह किलोमीटर दूर था, निष्ठा साइकिल चला कर वहां काफ़ी थकी हालत में पहुंच गई।

"अरे भैया पाँच मिनट रुक जाइए। बैठ कर सांस तो ले लेने दीजिए। फिर कोई आगे का काम करेंगे।" ऐसा कहकर निष्ठा वहीं पास के चबूतरे में बैठ गई। दो-तीन मिनट बाद उसने इधर-उधर देखा तो पाया कि यह हरिजनों का गांव था, जो कि कूड़ा उठाने का काम करते थे।

निष्ठा (मुंह बनाते हुए): "भैया, इस पूरी जगह में तो इतनी बदबू आ रही है।"

भैया (मुस्कुराते हुए): "अरे अभी तो तुम गांव की दहलीज पर हो। गांव के अंदर इससे ज्यादा आती है।"

भैया: "निष्ठा, चलो आओ मेरे साथ। हम उन बच्चों को बुलाते हैं। जल्दी से इकट्ठा करते हैं। आज तुम्हारा पहला दिन है। आज इन्हें गणित पढ़ाने की ज़िम्मेदारी तुम्हारी।"

निष्ठा: "ठीक है भैया।"

निष्ठा मन ही मन यह सोच रही थी, जो लोग दुनिया को साफ और सुंदर रखने का काम करते हैं। क्या वह सच में इन कूड़े के ढेरों के बीच रहने के लायक होते हैं? उसने तपाक से यह बात भैया को बोल दी।

भैया (मुस्कुराते हुए): "बड़ी ही फिलोसॉफिकल बन गई निष्ठा तुम पहले ही दिन। क्या बात है।"

निष्ठा मुस्कुरा दी, पर कहीं ना कहीं यह सब बातें उसके अवचेतन मन में बहुत गहरी बैठ रही थी।

जब वे गांव में बच्चों के पास गए तो अपने बीच नए व्यक्ति को देख कर बच्चे उसके पास जाकर, दीदी-दीदी बोलकर खुश होने लगे। धूल धूसरित, कुपोषित, आधे-अधूरे कपड़े और टूटी चप्पल पहने इन बच्चों की आंखों में ख़ुशी और चेहरे पर मुस्कुराहट देखकर निष्ठा को न जाने क्या हो गया। उसकी आंखों से आंसू बहने लगे।

उन लोगों ने सारे बच्चों को इकट्ठा किया, एक जगह पर बैठाया और एक-एक करके उन्हें कुछ विषय पढ़ाने लगे। सामान्य-भाषा, थोड़ा विज्ञान और गणित। आज गणित पढ़ाने की जिम्मेदारी तो निष्ठा की ही थी।

निष्ठा ने खूब मन लगाकर उन्हें गणित पढ़ाने की कोशिश की। ऐसा लग रहा था कि मानो आज आईआईटियन निष्ठा अपनी सारी गणितीय प्रतिभा उन बच्चों को दे देना चाहती है। पर उसके लाख प्रयासों के बावजूद बच्चों को लगभग न के बराबर चीजें समझ में आई। और आती भी कैसे! एक बच्ची ने निष्ठा के द्वारा गणित का सवाल पूछने पर उसका उत्तर यह दिया कि दीदी बड़ी भूख लगी है। तब निष्ठा समझ गई कि भूख से लड़ते इन बच्चों के दिमाग में गणितीय सूत्र कैसे बैठेंगे।

"बहुत पहले से उन क़दमों की आहट जान लेते हैं
तुझे ऐ ज़िंदगी हम दूर से पहचान लेते हैं"
-फ़िराक़ गोरखपुरी

निष्ठा: "भैया, अगले बार से मैं इनके लिए कुछ खाने के लिए लेकर आऊंगी वरना मुझे नहीं लगता कि हमारे इन्हें पढ़ाने का कोई फ़ायदा होने वाला है।"

जब वे वापस जाने ही वाले थे तब एक छोटी सी बच्ची स्वाति, निष्ठा के पास आयी और अपने दोनों हाथ पीछे करके बोली, "दीदी, नीचे झुखिहो।"

निष्ठा (मुस्कुराते हुए): "क्यों?"

स्वाति: "दीदी, ऐसे ना बताइहों, झुखिहैं पड़न आपको।"

निष्ठा मुस्कुराती हुई नीचे झुक गई, तभी उस छोटी बच्ची ने अपने हाथ में छुपाया हुआ एक पीला फूल निकाला और निष्ठा की चोटी में लगा दिया। निष्ठा आज तक इतनी खुश कभी नहीं हुई थी। खुशी के साथ-साथ कड़वी सच्चाई के यह लम्हें उसके दिल में घर कर रहे थे।

उस दिन का काम ख़त्म होने पर निष्ठा साइकिल चलाकर अपने हॉस्टल वापस आने लगी। वापस लौटते समय उसे बारह किलोमीटर का रास्ता पता भी नहीं चला क्योंकि उसके दिमाग में वे दृश्य अब तक घूम रहे थे।

उस रात निष्ठा को तब तक नींद नहीं आई, जब तक उसने उस गांव 'पटिया' को बदलने की कसम नहीं खायी।

अब पूरे साल निष्ठा ने उनको पढ़ाने के काफ़ी नए-नए तरीके खोजे। उन्हें मोबाइल फोन से परिचित कराया, कंप्यूटर के विषय में सामान्य जानकारी दी, गणित, हिंदी, सामान्य भाषा जैसे कई विषय पढ़ाए। वह बच्चे भी अब धीरे-धीरे काफी चीजें सीखने लगे थे। निष्ठा समय-समय पर उनकी परीक्षा भी लेती थी और एक अध्यापिका की तरह बच्चों को डांटती भी थी जब वे परीक्षा में अच्छे अंक नहीं पाते थे।

यहां तक कि जब एक साल खत्म हुआ तो निष्ठा उन्हें गर्मियों के लिए कुछ गृहकार्य भी देकर गई थी जोकि वह बच्चे निष्ठा द्वारा गिफ्ट की गई कॉपियों में ही करेंगे।

अगले साल जब निष्ठा फोर्थ ईयर में आई तो उसके साथी काफी कम हो चले थे। उसके सीनियर भी पास आउट हो गए थे और बड़ी-बड़ी कंपनियों में नौकरी करने लगे थे। अब निष्ठा ही बची थी जो उन बच्चों को अकेले संभाल रही थी, क्योंकि निष्ठा ने तो कसम खाई थी कि वह उसी पीले फूल सरीखे ही उन बच्चों की जिंदगी सुंदर बनाएगी जो की निष्ठा को पहले दिन उस प्यारी-सी स्वाति ने गिफ्ट किया था।

इस साल बच्चे निष्ठा की बातों को अच्छे से समझ पा रहे थे। निष्ठा ने एक योग्य अध्यापिका की भांति और कहीं ना कहीं उनकी बड़ी बहन की तरह सभी को पाला था, समझाया था, पढ़ाया था और इस काबिल बनाया था। पर फिर भी वर्तमान समाज के बच्चों से ये काफी पीछे थे। इसके अलावा गांव में रहने वाले कुल बच्चों की संख्या भी काफी ज्यादा हो रही थी

"हम आह भी करते हैं तो हो जाते हैं बदनाम
वो क़त्ल भी करते हैं तो चर्चा नहीं होता"
-अकबर इलाहाबादी

क्योंकि उस गांव में सौ-दो सौ से अधिक बच्चे थे पर निष्ठा केवल पंद्रह-बीस बच्चों की ही जिम्मेदारी ले रही थी। पर फिर भी निष्ठा ने जितनी ली थी उतनी जिम्मेदारी पूरी तरीके से निभा रही थी।

ऐसे ही एक दिन जब निष्ठा उनको पढ़ा रही थी और उन्होंने निष्ठा द्वारा हाल ही में ली गई परीक्षा में जो गलतियां की थी उनके विषय में समझा रही थी, तभी स्वाति बोल उठी।

स्वाति: "दीदी एक ठो सवाल पूछन रहे।"

(निष्ठा ने भौंहें चढ़ाते हुए उस बच्ची को देखा)

स्वाति: "दीदी, हमें आपसे एक सवाल पूछना था।"

निष्ठा: "हां, पूछो।"

स्वाति: "दीदी, हमारी परीक्षा तो होती है, क्या आपकी भी कोई परीक्षा लेता है?"

निष्ठा: "हां, ली जाती है हमारी भी परीक्षा।"
(पर इस छोटे से सवाल पर निष्ठा सोच में पड़ गई)

खैर, इस प्रकार यह साल भी पूरा बीतने को आ गया था। निष्ठा ने आईआईटी में इस साल भी टॉप किया था और उसे एक माइक्रोसॉफ्ट की कंपनी की ओर से सवा करोड़ रुपए सालाना के पैकेज का ऑफर भी आ गया था।

आखिर निष्ठा को अपनी ड्रीम जॉब मिल ही गई थी। परंतु ना जाने क्यों, निष्ठा के दिमाग में अजीब सी कशमकश थी, शायद स्वाति का वह सवाल अब भी उसे अजीब तरह से कचोट रहा था।

निष्ठा के जॉइनिंग डे पर कंपनी के लोग उसका इंतजार कर रहे थे। पर आज निष्ठा नहीं आई बल्कि उसकी ओर से कंपनी के एच.आर. को एक ईमेल आया था, जिसमें निष्ठा ने अपनी नौकरी ठुकरा दी थी।

शायद निष्ठा को उस प्रश्न का उत्तर मिल गया था।

विख्यात द्विवेदी
आई.आई.टी., बी.एच.यू.

"ख़ुदी को कर बुलंद इतना कि हर तक़दीर से पहले
ख़ुदा बंदे से ख़ुद पूछे बता तेरी रज़ा क्या है"
-अल्लामा इक़बाल

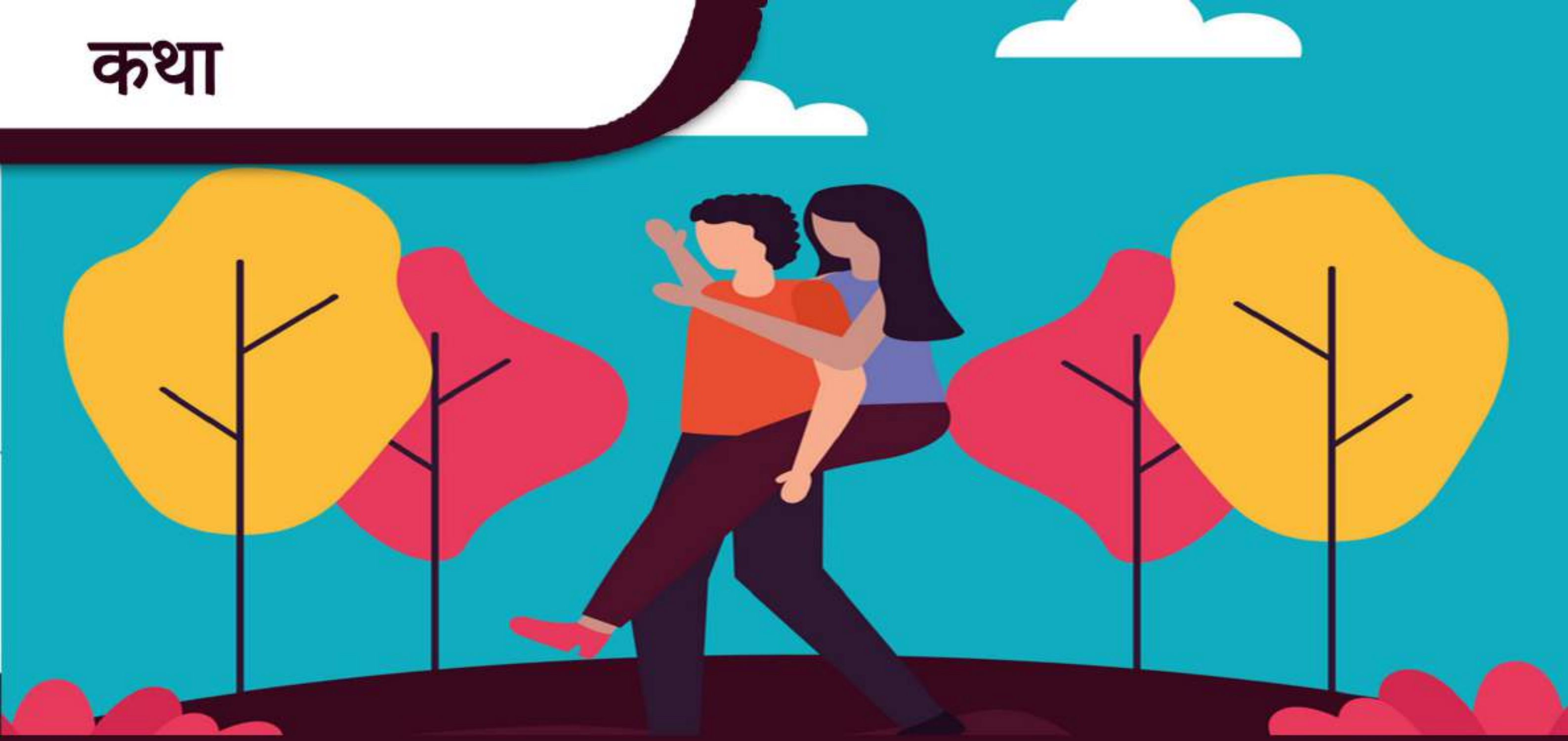

प्रेम कथा

आज तक आपने कई प्रेम कहानियां सुनी होंगी, जिनमें से कई लोग ऐसे होंगे जिनका प्यार मुकम्मल हो जाता है और कुछ ऐसे भी जो बिखर जाते इस मोहब्बत में मगर फिर भी वह ख़ुद को इकट्ठा कर फिर उसी इंसान तक पहुंच जाने की कोशिश करते रहते हैं जिन्होंने उनका वह हाल किया।

आज मैं एक और प्रेम कहानी लाया हूं, और वह भी ऐसी-वैसी नहीं बल्कि बचपन की प्रेम कहानी।

सन् 2005, राधिका अब कक्षा पाँच में पहुंच गई थी, और जैसा कि हर बचपन गुज़रता है, उसी तरह पहले तो उसे स्कूल जाना पसंद नहीं था, मगर ना जाने क्यों आज-कल वह बड़ी उत्सुक रहती थी स्कूल जाने को। एक दिन उसकी मां ने उससे कहा "अरे वाह मेरी प्यारी बेटी, क्या बात है? आज-कल काफ़ी ख़ुश लगती हो स्कूल जाते समय! बताओ ऐसा क्या ख़ास हो रहा?"

इस पर राधिका ने कहा, "कुछ नहीं मम्मी! वो क्या है ना, अब तक इतनी बार क्लास बदल गई मगर एक लड़का है रोहित हर बार मेरे साथ आ जाता है। तो उससे जब बातें हुईं, तब हमारी दोस्ती हो गई, तो अब जब उसके साथ रहती हूं तो एक अलग सी ख़ुशी महसूस होती है।"

मां बहुत ख़ुश हुई यह देखकर की राधिका इतनी जल्द ही दोस्त बनाना सीख गई। दिन बदलते रहे, सेमेस्टर बदलता गया, साल बदलते रहे और कभी-कभी तो उनकी क्लास भी बदली मगर तब तक वह बंधन इतना गहरा हो गया कि अब उनको क्लास बदलने से फ़र्क ही नहीं पड़ता था। उन दोनों का तो एक-दूसरे के घर भी आना-जाना लगा रहता। यहां तक कि अब तो राधिका की मां ने उसे अपना ही समझ लिया था। अब सारी बातें वह एक-दूसरे को बेझिझक ही बता देते थे। घंटों तक बेतुकी बातें और परीक्षा के लिए भी अब साथ ही पढ़ते थे। समय बढ़ता गया, रिश्ता गहरा होता चला गया। फिर आया उनकी ज़िंदगी का सबसे कठिन समय; अब उन्हें कॉलेज जाना था और इसके लिए अब उनको अलग होना था। तकलीफें तो थीं मगर उन्होंने एक-दूसरे को समझा ही लिया कि भले ही दूरी हो, यह रिश्ता हमेशा ही मज़बूत रहेगा।

"राह-ए-दूर-ए-इश्क़ में रोता है क्या
आगे आगे देखिए होता है क्या"
-मीर तक़ी मीर

कालेज के बाद भी दोनों का वह रिश्ता तनिक भी कमज़ोर न हुआ और कालेज के बाद जैसे ही राधिका घर को लौटी, रोहित ने उसे मिलने को कहा। बोला, "यार राधिका कितने साल हो गए मिले हुए, आज रात मिलते हैं ना!" राधिका भी अब इस बात से बहुत ख़ुश हुई और बोली, "हां! चलते हैं। लेकिन कहां?" रोहित ने कहा, "चलो आज रूफ टाप रेस्टोरेंट चलते हैं।" राधिका यह सुनकर बोली "हां ज़रूर फ़िर आज रात मिलते हैं।" रोहित उसकी हां सुनकर इतना ख़ुश हुआ कि मानो उसकी ख़ुशी का ठिकाना नहीं रहा। जब दोनों वहां पहुंचे तब वहां सही मौक़ा देखकर रोहित ने उससे आजीवन उसका साथ मांगा। राधिका ने कहा, "देखो मैं तुम्हें केवल एक दोस्त के नज़रिए से देखती हूं, मैं तुमसे शादी नहीं कर सकती। और मैं अभी वैसे भी नौकरी करूंगी तीन-चार साल। उससे पहले तो इसका सवाल ही नहीं।"

यह सुनकर रोहित टूट पड़ा और वह वहां से गुस्से में निकल गया। राधिका उसके पीछे-पीछे आती रही मगर बेचारी यह नहीं जानती थी कि रोहित ने वह गुस्से का दिखावा जानबूझ कर किया। वह उसे एक सुनसान सड़क पर ले आया जहां दूर-दूर तक किसी का भी नामोनिशान तक नहीं था। और तभी उसके भीतर छिपा वहशी दरिंदा बाहर आ गया। उसने उसको कुछ इस तरह तड़पाया की वह बेचारी सांस तक न ले सकी उसके बाद। मगर वह रुका नहीं। राधिका चीखती रही, चिल्लाती रही मगर उसे बचाने कोई न आया। और फ़िर कुछ देर के बाद वह कुछ बोलने की हालत में भी न रही। उसकी आंखें मानो एक अलग ही दर्द बयां कर रही हों। मगर वह दर्द शायद सिर्फ उस तड़प का नहीं था। वह इसलिए भी था क्योंकि उसको तड़पाने वाला और कोई नहीं बल्कि वह इंसान था, जिस पर उसे ख़ुद से ज़्यादा भरोसा था और इस दर्द को वह झेल ना पाई। आख़िर में जब वह हिम्मत और उम्मीद दोनों हार गई तब रोहित ने उस चहरे को, जो कभी उसे चांद-सा दिखता था, उस पर तेज़ाब डाल, दाग़ भी लगा दिया। आख़िर में वह बेचारी तड़प-तड़प कर दम तोड़ गई, मगर रोहित को इस बात से ज़रा भी फ़र्क नहीं पड़ा। राधिका की मां को जब इसके बारे में पता चला, वह बेचारी इस बात पर यकीन ही नहीं कर पाई। उन्होंने रोहित के ख़िलाफ़ कोई क़दम नहीं लिया। आख़िर वह भी तो उनका अपना था न। वह आज भी इसी उम्मीद में जीती है कि कहीं से उसकी बेटी लौट आए। और जब भी कोई प्रेम कहानी इस तरह अंत होती है मेरे मन में कुछ सवाल उठते हैं,
क्या ऐसी प्रेम कहानी को, जिसका अंत अपनी ही मोहब्बत की मौत, वह भी अपने ही हाथों से हो, क्या इसे प्रेम कहना सही है?
क्या राधिका की मां का रोहित को अपना मानना सही है?
क्या किसी मृत व्यक्ति का आजीवन इंतज़ार करना, यह जानते हुए कि वह कभी लौट नहीं सकता, सही है?
और आखिरी सवाल, जो हालत हमारे देश में लड़कियों की है, चाहे वह पाँच साल की हो या पचास साल की, क्या इस देश को भारत "मां" कहना सही है?

-प्रथम अग्रवाल

"ज़िंदगी ज़िंदा-दिली का है नाम
मुर्दा-दिल ख़ाक जिया करते हैं"
-इमाम बख़्श नासिख़

एक दुनिया असल दुनिया से परे!

अरे! तुम फ़िर लिखने लगे।

आख़िर ऐसा क्या है जो तुम हर बार लिखने बैठ जाते हो?हां! मुझे इस दुनिया में जीना अच्छा लगता है। इस दुनिया में सुकून है। होश में आओ और असल दुनिया को देखो। यह दुनिया आख़िर क्या काम आएगी इस दुनिया का सामना करने में? कभी इंसान को टूटते देखा है? असल दुनिया में इंसान दर्द से बिखर जाता है लेकिन वही दर्द इस दुनिया में ख़ूबसूरत कहलाता है।

कभी सुनी है कोई अधूरी प्रेम कहानी?

उस कहानी को इस दुनिया में मुकम्मल होते देखा है।

कभी शोर में भी एक अकेले इंसान को भटकता तो कभी उसकी तनहाईयों को शोर मचाते सुना है।

होता है क्या ऐसा असल ज़िंदगी में? कभी देखा है हिंदू-ओ-मुसलमान के बीच अमन और भाईचारे का भाव? इस दुनिया में यह भी मुमकिन है।

कभी देखा है आदमी दर्द बयां करे और उसका मज़ाक ना बने? इस दुनिया में उस दर्द पर तालियां ज़रूर बजती हैं मगर मज़ाक नहीं बनता।

कभी जागी है अपनी चाहत की दुनिया में जीने की इच्छा?

यह तुम्हारी दुनिया है, जैसे जीना चाहो जी सकते हो।

कभी चांद से बातचीत हुई है? इस दुनिया में चांद से तो मोहब्बत भी मुमकिन है। कभी सुना है इंसान के रूह की तड़प को? कभी एक पत्थर दिल इंसान के 'दिल' की परेशानी को समझा? कभी एक अमीर इंसान को अपनी ग़रीबी पर रोते देखा है? कभी इच्छा जगी, कि महज़ एक इंसान की एक 'इंसान' से बात हो? कभी मन किया तारों के नीचे बैठकर सुकून को ढूंढने का? कभी मन किया कि उस एक मोहब्बत से बिछड़ी रूह को उसके मालिक तक पहुंचाया जाए? कभी दिल किया किसी के साथ दिल की बात की जाए? कभी मन किया भटकने का, मन किया एक अलग ज़माने में खो जाने का, अपनी ज़िंदगी से कुछ पल चुरा कर, जिन पलों में मरते थे उन्हीं पलों में जीने का, अपनी दुनिया ख़ुद बनाने का?

यह दुनिया नहीं ज़िंदगी है, मेरी दूसरी ज़िंदगी। मैं जैसे चाहूं जी सकता हूं इस ज़िंदगी को। क्योंकि असल दुनिया मेरी समझ के परे है।

-प्रथम अग्रवाल

बनारस टॉकीज़

-सत्य व्यास

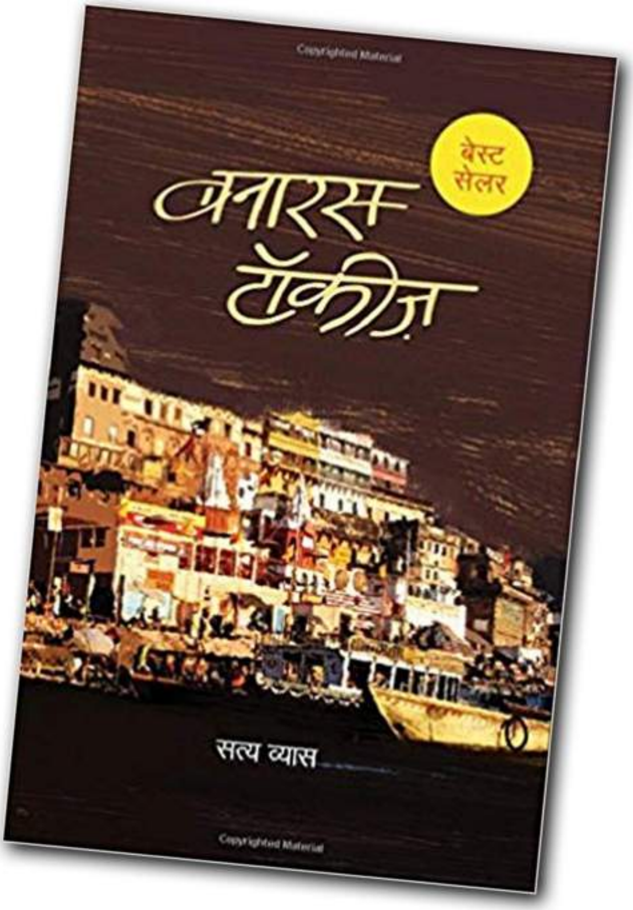

सत्य व्यास के उपन्यास 'बनारस टॉकीज़' में कहानी बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में स्थित भगवानदास हॉस्टल के कुछ छात्रों की है। हालांकि दूसरे छात्रों की दुनिया भी उससे अलग नहीं है। छात्रों का हॉस्टल में आना, एक दूसरे से मिलना और दोस्त बनाना एक आम बात है जो अन्य कैम्पसों में भी होती है। जैसे हर कॉलेज हमें जय-वीरू जैसे दोस्त मिल जाते है, यहाँ भी अनुराग, सूरज और जयवर्धन की तीन साल की दोस्ती काफ़ी मज़बूत और रोमांचक थी।

चूंकि यह कहानी बनारस में बड़ी होती है, इसीलिए माहौल जैसा भी हो उपन्यास की भाषा हर हिस्से में पूरी तरह बनारसी रंग में रंगी है। हॉस्टल में नामांकन की प्रक्रिया से कहानी शुरू होती है। रैगिंग के किस्से, गर्ल्स हॉस्टल की कारस्तानी, कैंपस की गप्पें, वहाँ की प्रेम कहानी-- एक के बाद एक सब कुछ पढ़ने को मिलता है। कहानी हम सूरज की ज़बानी सुनते हैं जो इस उपन्यास का एक प्रमुख पात्र भी है। इस कहानी में क्रिकेट एक ऐसा खेल बनकर उभरता है जो सीनियर्स और जूनियर्स को एक साथ जोड़ता हैं। दोनों टीमों के बीच में होने वाला यह मैच 'लगान' के मैच से कम नहीं था। व्यास जी ने इसका वर्णन बख़ूबी किया है। सबसे ज़्यादा चौंकाने वाली बात तब आती है जब कहानी अपने चरम पर पहुँचती है। अचानक से 'बम ब्लास्ट' होना और फिर उसका खुलासा होना, दोनों ही काफ़ी आश्चर्यजनक था। इस घटना से जुड़ा 'रोशन' एक संदेहास्पद लेकिन बहुत दिलचस्प चरित्र है। उपन्यास की शुरुआत में इन्ही की वजह से आपको भूत की एक छोटी सी घटना भी पढ़ने को मिलेगी। हॉस्टल में रहने वाले लोग या वह जिन्होंने यह ज़िन्दगी जी ली है, इसे पढ़कर अपने हॉस्टल और कैंपस लाइफ़ वापस याद कर सकते हैं। अपने खट्टे-मीठे अनुभवों को याद कर रोमांचित हो सकते हैं। कैंपस की दोस्ती, हॉस्टल की मस्ती, गॉसिप, गर्ल्स हॉस्टल की कहानी आपके अपने कॉलेज के दिनों की याद ताज़ा करा सकती है। हर मायने में यह कहानी आपको अपनी कहानी लगेगी।

"हम को मालूम है जन्नत की हक़ीक़त लेकिन
दिल के ख़ुश रखने को 'ग़ालिब' ये ख़याल अच्छा है"
-मिर्ज़ा ग़ालिब

नमक स्वादानुसार
-निखिल सचान

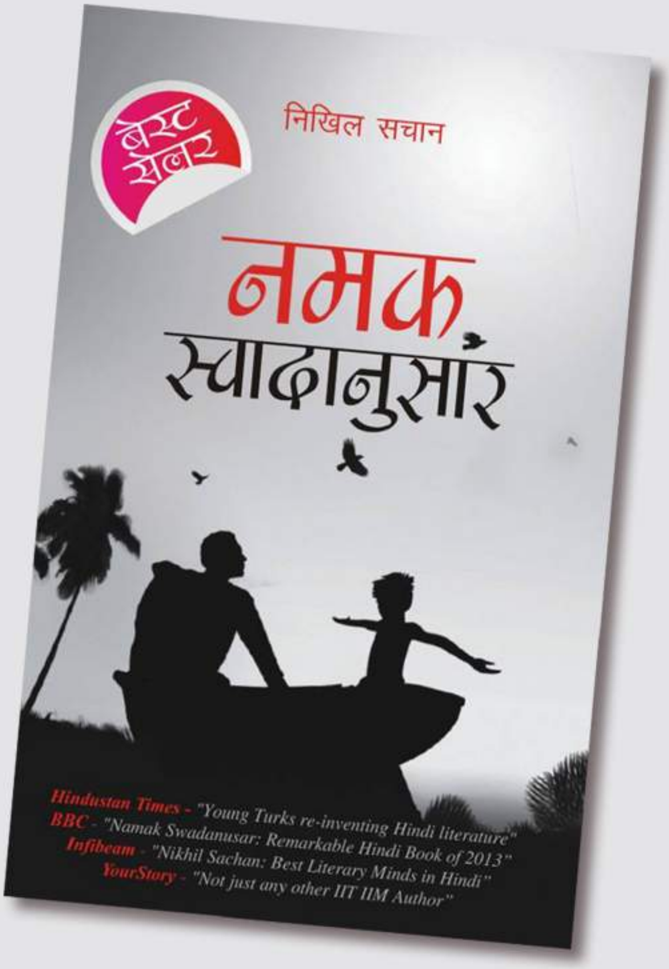

मेरी एक बड़ी गंदी आदत है, मैं क़िताबें पढ़ते समय अक्सर उन्हें फेसबुक या व्हाट्सैप पर स्टेटस में डाल देता हूँ। पर यक़ीन मानिए, यह किताब जब मैंने शुरू की तो फिर आख़िरी पन्ने तक कुछ और ख़याल ही नहीं आया। 'नमक स्वादानुसार' में पहली ही कहानी से निखिल सचान किताब का शीर्षक सार्थक करते हुए नज़र आते हैं। जैसा कि वे कहानियों में लिखते हैं, आज की 'अपडेटेड' पीढ़ी को भारी-भरकम ज्ञान नहीं चाहिए। ऐसा कुछ चाहिए जिससे वे आसानी से जुड़ सकें। निखिल इस बात का पूरा ध्यान रखते हैं कि साहित्य बोझ न बने। ऐसा हो जिसे लोग आसानी से पचा सकें, उनके स्वाद के मुताबिक। भाषा-शैली भी आम बोलचाल की ही है। पर धोखे में मत आइएगा। निखिल जानते हैं कि साधारण-सी स्थितियों में भी कहानी को ख़ास कैसे बनाया जाए। जी हाँ, इस किताब की कहानियों में आप अपने समाज को देखेंगे। दो मज़हब को लड़ते हुए देखेंगे। एक आशिक़ को पिटते हुए देखेंगे। बच्चों की मासूमियत देखेंगे, बड़ों की सोच देखेंगे। कुछ भी ऐसा नहीं जिसे आपने नहीं देखा हो, या जिसे आप जानते नहीं हों। एक कहानी में दो दोस्तों के होमवर्क से बचने के तरीके बताकर लेखक बचपन की यादों में ले जाते हैं, दूसरी में एक नादान बच्चे की डायरी से, उसकी नज़रों से दुनिया दिखाते हैं, तो तीसरी कहानी में दो बच्चों के खानपान जैसी छोटी-सी चीज़ के इर्द-गिर्द एक समाज को नंगा करके रख देते हैं। वेश्यावृत्ति या पुनर्विवाह जैसे मुद्दे जिनपर इतनी बहस होती है, उन मुद्दों पर भी कहानी इस तरह बुनी गई है कि आपको इन चीज़ों को देखने का एक नया नज़रिया ज़रूर मिल जाएगा।

यह किताब मनोरंजन तो भरपूर देती ही है, साथ ही चुपके से कुछ नसीहत भी देते हुए निकल जाती है। ख़ासकर युवाओं को। बड़े शहर में सपने कैसे टूटते हैं, उन्हें जिंदा कैसे रखा जाए और आत्महत्या जैसे विषयों पर उनकी कहानियाँ भी पढ़ने योग्य हैं। किताब में ऐसा एक भी पन्ना नहीं जहाँ दर्शन नहीं हो, ज्ञान नहीं हो, पर निखिल अपनी पहली किताब में ही एक कुशल बाग़बान की तरह काँटों को फूल से ढँक देते हैं। कुछ इस तरह कि शब्दों की चुभन और ख़ुशबू लम्बे समय तक बरकरार रहती है। कहानियों के बारे में ज़्यादा नहीं बताऊँगा, बस इतना जान लीजिए कि यह किताब हिंदी की 'बेस्टसेलर' है। तो जाइए और पढ़ डालिए यह किताब; तब आप समझेंगे कि यह 'बेस्टसेलर' ऐसे ही नहीं बन गई।

'और भी दुख हैं ज़माने में मोहब्बत के सिवा,
राहतें और भी हैं वस्ल की राहत के सिवा"
- फ़ैज़ अहमद फ़ैज़

ज़िन्दगी आइस पाइस

-निखिल सचान

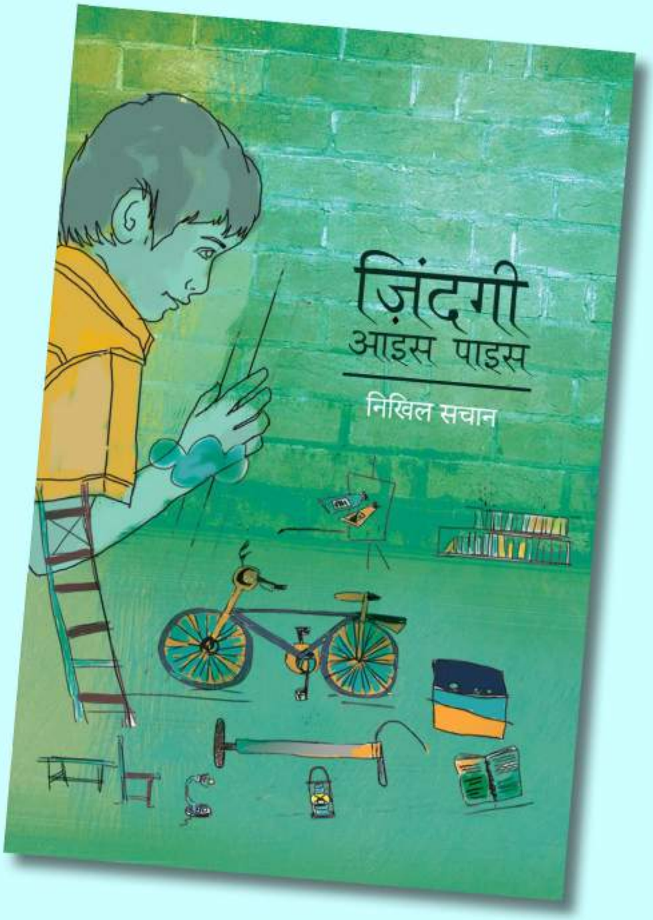

ज़िन्दगी आइस पाइस को एक किताब कहना सरासर ग़लत होगा। यह कोई किताब नहीं है। ऐसा लगता है मानो निखिल सचान जी ने आपकी पूरी ज़िन्दगी हूबहू आपके सामने रख दी हो। इसे भावनाओं का समुन्दर कहना उचित होगा। ऐसा समंदर जिसके किनारे पर चलती हवा बचपन के दिनों का सुकून देती है। वह हवा जो उन दिनों की याद दिलाती है जब हम और आप दस-बारह साल के थे और अपने अपार्टमेंट में आए किसी नए लड़के को तंग करने में जुटे रहते थे।वह वक़्त जब आपका परिवार ही आपके लिए सबकुछ था और आपके पापा आपके हीरो थे। वे दिन जब आपको किसी से कोई मतलब नहीं था, जब आपका 'मैच्योरिटी' नाम की चिड़िया से पाला नहीं पड़ा था। इस समंदर में इश्क़ की नावें भी चलती हैं। ।

किशोरावस्था वाले इश्क़ की, जब आप स्कूल में अपने 'गुरू' से लड़की पटाने की तरकीबें सीखते हैं और अंत में सब पर एक नाटकीय तरीके से पानी फिर जाता है। निखिल युवाओं की नब्ज़ भाँप लेते हैं। वो जानते हैं पाठक क्या पढ़ना चाहता है, और उसे क्या पढ़ना चाहिए। इसी में सामंजस्य बिठाते हुए इश्क़ की नाव समुन्दर में आगे बढ़ती है और ऐसे प्यार की बात होती है जो पावन है, शाश्वत है किन्तु समाज उसे स्वीकार नहीं कर सका।

यह नाव समलैंगिक प्रेम के तूफ़ानों में घिरती है और फिर जा रुकती है अपनी पराकाष्ठा पर। एक ऐसे 'क्यूट' से प्यार पर जो एक डाकू को इंसान बना देता है। तूफ़ान हताशा के भी आते हैं कि किस तरह एक इंसान अपनी ज़िम्मेदारियों के चलते अपने सपनों का गला घोंट देता है। वे ज़िम्मेदारियाँ जो एक बच्चे को यह भी अहसास होने नहीं देती कि बाल-मज़दूरी गुनाह है। उल्टे उसे नौकरी छूटने का दुःख दे जाती हैं। उल्टे उसे नौकरी छूटने का दुःख दे जाती हैं।

वहीं दूसरी ओर एक बूढ़ी दंपत्ति है जो इन्ही बच्चों के चलते ज़िन्दा है लेकिन वक़्त और हालात उनसे जीने की यह वजह छीनना चाहते हैं। कुल मिलाकर बात यह कि इसे पढ़कर आपको ऐसा लगेगा कि निखिल जी ने कहानियों के किरदार आपके पड़ोस से ही उठा लिए हैं। एक कहानी ख़त्म कर नई कहानी शुरू करने पर आपको लगेगा कि जैसे इस छत से उस छत पर कूद गए, पर मोहल्ला वही है। ऐसे किरदार हैं जो बहुत सामान्य हैं, फिर भी बेहद ख़ास हैं। अगर आप फ़िल्मी कीड़े हैं तो इस किताब में ऐसी बहुत सी बातें हैं जिन्हें पढ़कर आप ख़ुद को वे बेहतरीन फ़िल्में याद करने से नहीं रोक पाएँगे। एक मुस्कान तो ज़रूर आ जाएगी चेहरे पर। अपनी पहली किताब 'नमक स्वादानुसार' की तरह ही निखिल इस किताब की भाषाशैली ऐसी रखते हैं कि जो 'हार्डकोर' साहित्य-प्रेमी नहीं वे भी इसका भरपूर आनंद लें, और जो बात लेखक समझाना चाह रहे हैं उसपर आसानी से पहुँचे। इसमें कोई दो राय नहीं कि यह किताब आपके बुकशेल्फ़ पर एक ख़ास जगह की हक़दार है। तो अगर आप पुस्तक प्रेमी हैं तो इसे पढ़िए, और पुस्तक-प्रेमी नहीं हैं तब तो इसे ज़रूर पढ़िए। हम नहीं चाहते कि आपमें से कोई भी इस नायाब चीज़ का आनंद उठाने से वंचित रह जाए।

"उजाले अपनी यादों के हमारे साथ रहने दो
न जाने किस गली में ज़िंदगी की शाम हो जाए "
-बशीर बद्र

ऋषि कान्त हिंदी लिट्रेरी एसोसिएशन के शुरूआती दिनों में इसके सदस्य रह चुके हैं। इतने वर्ष होने के बावजूद आप क्लब से जुड़े रहते हैं एवं हमारा मार्गदर्शन करते हैं।
प्रस्तुत है आत्रेई बासु से उनकी बातचीत के कुछ अंश...

ऋषि कान्त

प्र. वी.आई.टी. से निकलने के बाद ज़िन्दगी में किस तरह का बदलाव आया है?

शुरुआत में तो ज़्यादा कोई बदलाव नहीं लग रहा था। बल्कि ऑफिस के काम में काफ़ी कुछ नया सीखने को मिल रहा था। अंतर सिर्फ़ इतना था कि अब मैं अपने माता-पिता पर निर्भर रहने के बजाय आर्थिक रूप से स्वतंत्र था। पर जैसे-जैसे वक़्त गुज़रता गया, ज़िन्दगी का जो मक़सद है उसका स्पष्ट अंदाज़ा होने लगा।

प्र. कॉलेज से निकलने के बाद आपका व्यवसाय या आय का स्रोत क्या है ?

मैंने अपने दोस्तों के साथ मिलकर "AIMS" नामक स्टार्ट-अप का निर्माण किया। उसकी शुरुआत हुए अब कुछ साल बीत गए हैं। मैं वहाँ एसोसिएट डायरेक्टर ऑफ़ प्रोडक्शन के पद पर हूँ।

प्र. जब आप एच.एल.ए. में शामिल हुए थे तो आज की तुलना में यह क्लब कितना अलग था?

हिंदी लिट्रेरी एसोसिएशन का आरंभ मेरे कॉलेज में दाख़िल होने के एक साल पहले ही हुआ था। उस वक़्त बस पाँच से दस लोग क्लब का हिस्सा हुआ करते थे। हम लोगों ने 'कश्मकश' नामक पहला इवेंट संचालित किया था। क्लब अपने पहले क़दम ले रहा था और उसे काफ़ी प्रतिभाशाली लोगों का सहारा मिल रहा था।

प्र. कॉलेज के क्लब या चैप्टर किस तरह से हमारे चरित्र निर्माण में मदद करते हैं? ऐसी कौन-सी चीज़ें हैं जो आपको लगता है हम इनके द्वारा सीखते हैं और निजी जीवन में लागू कर सकते हैं ?

हमारे क्लब के उस समय के सेक्रेटरी और मेरे अज़ीज़ दोस्त मयूर आगे चलकर आई.आई.एम. शिलॉन्ग में दाख़िल हुए।

"दक्षिण भारत के किसी कॉलेज में हिंदी के लिए खड़े रहना ही अपने आप में बहुत बड़ी बात है"

-ऋषि कान्त

उनके वहां समिति हुआ करती थी जिसमें वह काफ़ी ऊंचे पद पर थे। एक दफ़ा उन्होंने मुझे फ़ोन किया और वहां के क़िस्से बताने लगे। उन्होंने मुझे बताया कि कैसे ग्रेजुएशन के समय कॉलेज में पढ़ाई के अलावा जो कुछ भी सीखा आज वह ज़्यादा फ़ायदेमंद था। पढ़ाई के अतिरिक्त गतिविधियाँ हमें हमारी प्रतिभा का अंदाज़ा दिलाती हैं। अब जब बात एच.एल.ए. की आती है, तो दक्षिण भारत के किसी कॉलेज में हिंदी के लिए खड़े रहना ही अपने आप में बहुत बड़ी बात है। मैंने इस क्लब में जुड़ने के साथ ही काफ़ी नए दोस्त बनाये थे जो एक परिवार जैसा था और वह परिवार आज तक मेरे साथ है। कॉलेज में किसी भी तरह की समस्या इनके साथ हल करने में एक अलग ही मज़ा आता था। तो हाँ, मैं यह मानता हूँ कि वी.आई.टी. या किसी भी कॉलेज में, क्लब और चैप्टर्स में रहना ज़रूरी है क्यूंकि यह बहुत तरीकों से लाभदायक है।

प्र. आपके नज़रिये में यह क्लब किस तरह से बढ़ा है ?

कई आयामों में यह क्लब बदल चुका है। कौशल में सुधार इवेंट्स के पोस्टर में दिखाई देता है। इवेंट्स और कार्यक्रमों की संख्या बढ़ चुकी है एवं उनकी गुणवत्ता नयी उचाईयां छू रही हैं। आशा है आगे भी ऐसे ही सुधार देखने को मिलेंगे और यह सफ़र कायम रहेगा। पर मैं एक महत्वपूर्ण बात ज़रूर कहना चाहूंगा जो मैं उम्मीद रखता हूँ कि क्लब को आगे लेकर जाने वाले याद रखेंगे। नए बच्चों को लेते समय उन्हें यह ध्यान देना चाहिए कि वे क्या सीखने की आशा लेकर आये है और जब वे एच.एल.ए. से विदा लेकर जा रहे हों तो वे जो सीखने आये थे उससे कहीं ज़्यादा सीख कर जाएं। हमने इस क्लब को इसी प्रेरणा से शुरू किया था और मुझे विश्वास है कि क्लब उसी रास्ते पर चलता रहेगा।

प्र. इतने नियम-कायदों के बावजूद भी आपने कॉलेज में किस तरह से अच्छे अनुभव ढूंढें और ये अनुभव आपके जीवन के सफ़र में किस तरह फायदेमंद रहा?

कॉलेज का सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा 'हॉस्टल लाइफ' था। आप हॉस्टल के एक कमरे में उस तरह के लोगों के साथ रहना सीखते हैं जिन्हें आप दूर -दूर तक नहीं जानते हैं। शायद वे आपकी भाषा भी न बोलते हों। अगर आप किसी भी जगह पर चार साल अपने बल पर, माता-पिता और बचपन के दोस्तों से दूर रहेंगे तो आपकी सहनशीलता अपने आप बढ़ जाएगी। आपके परिपक्वता स्तर का विकास होगा। आपको अकेले रहने पर कुछ निर्णय खुद लेने पड़ेंगे। ऐसी चीजें काफ़ी कुछ सिखा जाती हैं जिसका एहसास आपको बाद में ही होता है। सिर्फ़ कॉलेज के नियम ही आपका चरित्र विकसित नहीं करते, बल्कि आपका उठना-बैठना जिन लोगों के साथ होता है और जिन स्थितियों से आप गुज़रते है उनसे सीखी बातें आगे बढ़ने में मदद करती हैं।

प्र. एच.एल.ए. के साथ गुज़ारे हुए आपके सबसे पसंदीदा पल कौन से थे ?

हम थर्ड ईयर में थे और शायद वह साल मेरे लिए एच.एल.ए. के साथ बिताया हुआ सबसे यादगार साल था। उस साल में पहली बार हमारे क्लब को 'RIVIERA' में छः इवेंट का आयोजन करने का मौका मिला था। उन इवेंट्स में से 'ब्लफ्फ़मास्टर' और 'अंताक्षरी' मेरे पसंदीदा थे जो कि काफ़ी सफल रहे थे।

प्र. वी.आई.टी. आने का यह सफ़र जो आपने चुना था, क्या इससे आपको अपनी आज की ज़िन्दगी में अच्छा फल मिला ?

"हम को मिटा सके ये ज़माने में दम नहीं
हम से ज़माना ख़ुद है ज़माने से हम नहीं"
-जिगर मुरादाबादी

बिलकुल! मुझे अपनी पहली नौकरी वी.आई.टी. से मिली थी जिससे मैंने ज़िन्दगी में काफ़ी कुछ सीखा था। अपने जीवन में मैं जो करना चाहता था उसका अंदाज़ा मुझे आज जाकर हुआ और कहीं न कहीं उसका श्रेय मेरे कॉलेज को जाता है। मुझे ज़िन्दगी भर का साथ निभाने वाले काफ़ी अच्छे दोस्त मिले जिनके साथ अच्छे से लेकर बुरे हर तरह के अनुभवों का एहसास हुआ।

प्र. जैसे कि आपको पता है कि हर साल कॉलेज में प्लेसमेंट के समय बच्चों में काफ़ी बेचैनी मची रहती है। इस दौरान बच्चों को किस तरह अपने आप को शांत रखना चाहिए और इस परीक्षा से कैसे निपटना चाहिए?

मैं यह सुझाव देना चाहूंगा कि प्लेसमेंट में बैठने से पहले आप यह तय कर लें कि आप अपने जीवन से क्या चाहते हैं और ज़िन्दगी को कैसे आगे लेकर जाना चाहते हैं। यह निर्णय लेना वैसे तो कोई आसान काम नहीं है पर कोशिश ज़रूर करनी चाहिए। मैंने हमेशा यही माना है कि यह सवाल अपने विवेक से पूछना बच्चों को उत्साहित करता है और कॉलेज को इस बात पर बच्चों को प्रोत्साहित करना चाहिए। न कि सिर्फ़ जो सिखाया जा रहा बस उसी को पालन करना चाहिए। मैं सभी बच्चों को शुभकामनाएं देना चाहता हूँ और आशा करता हूँ वे जीवन से जो भी चाहते हैं ख़ुशी से प्राप्त कर पाएं।

परिचय

हरिवंश राय बच्चन

(27 नवम्बर 1907 – 18 जनवरी 2003)

दो बेटियों के पैदा होने के बाद, हरिवंश जी के पिता को एक बेटा चाहिए था जो उनका वंश बढ़ा सके, इसलिए पंडित जी के कहने पर उन्होंने अपने जेरो रोड वाले घर पर हरिवंश पुराण का पाठ कराया जिसके बाद हरिवंश जी का जन्म हुआ ।

एक बार गांधी जी ने बच्चन जी की कविता मधुशाला सुनकर उन्हें बुलाया। महात्मा गांधी ने कहा कि जो कुछ वह लिख रहे हैं उसे वे (गांधी जी) सुनना चाहते हैं। उन्होंने कुछ लाइनें सुनीं और कहा कि "इसमें तो कुछ भी ऐतराज लायक नहीं है।" ये सुनते ही हरिवंश जी ने राहत की सांस ली और फौरन वहां से निकल गए ताकि कहीं गांधी जी का मन न बदल जाए।

अमिताभ बच्चन जब घर से भाग कर बम्बई गए तो वे जिस निर्देशक से काम मांगने गए, वे हरिवंश जी के मित्र थे। उन्होंने अमिताभ के वहां होने की खबर इनको भिजवा दी। हरिवंश जी ने पत्र लिख कर मित्र को कहा कि "यदि तुम्हें लगता है कि उसमें (अमिताभ में) प्रतिभा है तो उसे रख लो, नहीं तो समझा-बुझा कर घर वापस भिजवा दो।

"वो अफ़्साना जिसे अंजाम तक लाना न हो मुमकिन
उसे इक ख़ूब-सूरत मोड़ दे कर छोड़ना अच्छा"
-साहिर लुधियानवी

ये न थी हमारी क़िस्मत कि विसाल-ए-यार होता
अगर और जीते रहते यही इंतिज़ार होता

-मिर्ज़ा ग़ालिब

हमारे प्रयासों से जुड़कर हमारा प्रोत्साहन करें

हिंदी लिट्रेरी एसोसिएशन

ईमेल: hla@vit.ac.in

फेसबुक: hla.vitu

इन्स्टाग्राम: hla_vitu

यूट्यूब: hlavitu